१/२४ २६-१-७० (२४)

मैं बोलता हूं
ताकि वह कह सकूं
जो कि नहीं कहा जा सकता है।
कैसी विडम्बना है
कि निशब्द की ओर इंगित के लिए
शब्दों का सहारा लेना होता है !
लेकिन, तुम शब्दों को मत पकड़ लेना;
क्योंकि मेरे शब्द शब्द के लिए नहीं हैं।
शास्त्र को पकड़ने से ही शास्त्र निर्मित
होते हैं।
और शास्त्र सत्य के मार्ग में सबसे बड़ी
बाधा हैं।
चाँद को बताने वाली अंगुली को नहीं
पकड़ना है।
क्योंकि अंगुली चाँद नहीं है !

युक्रांद

'अंतस की अकुलाहट'

तथाता के चरणों में, सादर

(१) हे मुक्तामन्, आप इतनी बड़ी ऊंचाई पर
चले गए हैं, (और अभी भी जा रहे हैं
कि, जहां हमारा देखना भी बमुश्किल हो गया है।
आपका तो कोई कसूर नहीं, लेकिन हम क्या करें ?
हम पर भी तो कुछ करुणा करें, जब तक हमें वही
आंख उपलब्ध न हो।

(२) मेरे सारे आदर्श उड़ गये और सब सिद्धान्त खोगये।
कुछ तय नहीं हो पाता,
क्या करूं, क्या न करूं ?
अतएव मंजिल शून्य होती जा रही है।
लगता है,
न कहीं जाना है।
जिस किनारे पर तू फेंक दे,
वही मेरी मंजिल।
डुबाओ तो डूबने को राजी हूं,
बचाओ तो बचने को।
अगर ले चलो साथ तो चलने को राजी हूं।

जयंति के प्रणाम
जूनागढ़

यह कैसा रहस्य है ?

मैं परमात्मा को खोजता था। उसके मंदिर में प्रवेश के बिना जीवन का मृत्यु के अतिरिक्त और कोई अर्थ नहीं है। और मृत्यु भी क्या कोई अर्थ है ? बहुत से मंदिर में गया, लेकिन उसका कोई मंदिर नहीं था। पत्थर वहां थे, परमात्मा नहीं। शास्त्रों के श्मशान में भटका ? मृत शब्द थे वहां, जीवन सत्य नहीं ? और तब मन निराश होने लगा। क्या सत्य है ही नहीं ? किन्तु मेरे सामने तो दो ही विकल्प थे : परमात्मा या मृत्यु। अमृत को पाये बिना जीवन, जीवन नहीं है। ऐसी ही अंधकार स्थिति में विद्युत की भांति एक विचार चमका : 'कहीं ऐसा तो नहीं है कि मैं ही उसका मंदिर हूं ?' अंधकार घना हो तो उसका घनापन ही आलोक का द्वार बन जाता है। एक नई दिशा उद्घाटित हुई। स्वयं में ही खोजने लगा। किन्तु खोजना क्या था ? खोदना ही था। चित्त पर बहुत पर्तें थीं बहुत भाँति के पक्षपात थे। और सत्य तो तभी आ सकता है जबकि पूर्ण निष्पक्ष चित्त उसके स्वागत के लिए तैयार हो। शास्त्र और सिद्धान्त छोड़ने पड़े क्योंकि वे ही उस सिंहासन पर बैठे थे जहां कि सत्य को बैठना है। यह कार्य था अति कठिन। क्योंकि ज्ञान का अहंकार छोड़ना था और अज्ञान को स्वीकार करना था। अज्ञान की स्वीकृति ज्ञान की ओर पहला और अनिवार्य चरण है। विवेक पाने के लिए विश्वास छोड़ने ही होंगे। अंधेपन को राख पर ही तो आंखों का जन्म हो सकता है। विश्वास और अविश्वास दोनों ही बाधायें हैं। एक में गिरने पर कुआं और दूसरे पर गिरने में खाई है। मार्ग है दोनों के मध्य में और मध्य है दोनों से मुक्त। न आस्तिक न नास्तिक— ऐसा चित्त ही, 'जो है' उसे खोजने में समर्थ होता है। विचार मात्र छोड़ दिये तो तट छूट गया और अज्ञात सागर की यात्रा शुरू हुई। निर्विचार चेतना अनंत सागर ही है। शून्य की नौका और अज्ञात चेतना का सागर। पैरों के नीचे से भूमि हट गई। सब सहारे टूट गये। सब आधार खो गये। निराधार हो गया और जैसे अतल खाई में गिरने लगा। गिरता ही जाता था—गिरता ही जाता था। लगा कि जैसे अमृत की खोज में मृत्यु के ही मुंह में आ गया हूं। और सब खो गया था। मैं ही बचा था। वह भी अनंत खड्ड की भांति बिखर गया। परमात्मा का मंदिर आ गया था। मैं ही था खोजने वाला। मैं ही था खोज में बाधा और मैं ही था जिसे कि खोजा जाना था। यह कैसा रहस्य है ? जहां स्वयं था पाया कि वहां सर्व है। जहां मृत्यु थी पाया कि अमृत है। फिर स्वाँस स्वाँस में बहने लगा। भीतर आनंद बहने लगा। भीतर आनंद। बाहर प्रेम। धर्म यही है। स्वरूप यही है। सत्य यही है।

***

श्री रजनीशजी के प्रति दो भाव-सुमन

--शिव

(१)

मैं भूल में था
प्रभो !
तुम बिल्कुल भी महान् नहीं हो
क्योंकि कण-कण में तुम्हीं तो व्याप्त हो,
फिर कौन महान् हो ?
किससे महान् हो ?
कैसे महान् हो ?

●

(२)

अब
मैं मौन हो जाना चाहता हूं
मेरे नाथ !
हां, अब मेरा लिखने-लिखाने का
मन नहीं होता
पहले जरूर चाहता था कि
तुम्हारी बातें दुनिया के कोने-कोने तक फैल जायँ
और उसके लिए जो होता था—
करता भी था
पर अब वह सब नहीं होता
मेरे प्यार !
अब तो तुम्हारी बातें कुल पहुंच जायँ
और चाहे कहीं भी न पहुंचे—
इस बात की फिक्रों से बहुत दूर
प्रेम में डूब जाना चाहता हूं
जहां न 'तू' रहे
न 'मैं'
बस प्रेम....प्रेम....प्रेम ।

●●

मंगल गीत

तुम्हारा मंगलमय हो, मंगलदाता,
हे मुक्तात्मन्, हे परमात्मन्, हे चिदात्मन् हो
मंगलमय हो, मंगलदाता.....
अमृतदाता, खुद विष पीता,
भारत के हो भाग्य विधाता ।
मंगलमय हो, मंगलदाता.....
सबके प्यारे, सबसे न्यारे,
मेरी अंखियन के तुम तारे ।
मंगलमय हो मंगलदाता.....
विश्व विभूति, प्रेमल मूर्ति,
जयति के तुम आत्म ज्योति ।
मंगलमय हो मंगलदाता.....

(आचार्यजी के जन्म दिन पर उन्हीं के चरणों में सादर
समर्पित

जयबंती शुक्ल, जूनागढ़

●●●

युवा चित्त का जन्म

आचार्य श्री का
गुजरात में युवक क्रांति दल के सदस्यों को आवाहन

(सुरेन्द्रनगर में दिया गया एक प्रवचन)

संकलन : (युक्रांद, सुरेन्द्रनगर)

पुरानी संस्कृतियां और सभ्यताएं धीरे धीरे सड़ जाती हैं और जितनी पुरानी होती चली जाती हैं उतनी ही उनकी बीमारियां संघातक भी हो जाती हैं। उन अभागी सभ्यताओं में से हम एक हैं जिनका सब कुछ पुराना होते होते मृतप्राय हो गया है। यदि ऐसा कहा जाय कि इस जमीन पर हम अकेली मरी हुई सभ्यता हैं तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। दूसरी सभ्यताएं पैदा हुईं, मर गयीं और उनकी जगह नयी सभ्यताओं ने जन्म ले लिया। हमारी सभ्यता ने मरने की कला ही छोड़ दी और इसलिए नयी जन्म लेने की क्षमता ही खो दी। जरूरी है कि बूढ़े चल बसें ताकि बच्चे पैदा हों और अगर कभी किसी देश में ऐसा हुआ बूढ़ों ने मरना बन्द कर दिया तो बच्चों का पैदा होना बन्द हो जायगा। हमारी सभ्यता के साथ ऐसा ही दुर्भाग्य हुआ है। हमने मरने से इन्कार कर दिया, इस भ्रांति में कि अगर हम मरने से इन्कार करेंगे तो शायद जीवन हमें बहुत परिपूर्णता को उपलब्ध हो जायगा। हुआ उल्टा। मरने से इन्कार करके हमने जीने की क्षमता भी खो दी। हम मरे तो नहीं, लेकिन मरे मरे होकर जी रहे हैं और मरे मरे जीने से मर जाना हजार गुना बेहतर है। क्योंकि मरने से फिर जन्म हो जाता है, पुनर्जन्म हो जाता है। व्यक्तियों का ही पुनर्जन्म नहीं होता है, सभ्यताओं और संस्कृतियों का भी पुनर्जन्म होता है। भारत ने एक अनूठा, लेकिन दुर्भाग्यपूर्ण प्रयोग किया है। हम ठहर गये हैं, जड़ हो गये हैं कि हम इतने जड़ हो गये हैं कि जीने के अंकुर हममें से निकल ही नहीं सकते। जैसे कोई बीज पत्थर की तरह जड़ हो जाये, सुविधा होगी उस बीज को, टूटना नहीं पड़ेगा। अगर कोई बीज पत्थर हो जाय तो फिर टूटेगा नहीं, बिखरेगा नहीं लेकिन तब उससे अंकुर भी पैदा नहीं होगा।

एक तो पहली बात युवकों के इस सम्मेलन में मैं यह कहना चाहता हूं कि भारत को पुनर्जन्म के लिए रीबर्थ के लिए तैयार करना है। भारत का पुनर्जन्म हो सके इसकी तैयारी करनी है और भारत का पुनर्जन्म हो, इसके दो अग होंगे, एक अंग तो पुराने भारत की मृत्यु हो और दूसरा अंग नये भारत का जन्म। और इन अंगों में मृत्यु पहले होगी, जन्म पीछे होगा। एक तो हमें पुराने भारत को किस तरह दफनाना है, ताकि नया भारत जन्म ले सके और एक दिशा चिन्तन करना है और सोचना है कि हमने पुराने को किस भांति बचा रखा है, हम उसे कैसे दफनायें।

पहली बात, भारत का पुनर्जन्म कैसे हो ? इस संबंध में दो एक सूत्र मैं आपसे अभी कहना चाहूंगा। एक तो किसी भी देश का पुनर्जन्म तब होता है जब उसकी आँखें अतीत की तरफ से हट जाती हैं और भविष्य की ओर लग जाती हैं। नया जन्म भी तभी होता है जब कोई कौम भविष्य की तरफ देखने लगती है और अतीत की तरफ से आंखें हटा लेती है। हमारा देश

पीछे की तरफ देखने वाला देश है जो हजार साल से पीछे और पीछे ही देखता रहा है। हमारी भविष्य की कोई कल्पना, कोई कामना, कोई स्वप्न नहीं है। हमारे पास स्मृतियां हैं, कल्पनाएं बिल्कुल नहीं। हमारे पास अतीत के अनुभव हैं लेकिन भविष्य को जन्म देने की योजनाएं बिल्कुल नहीं। और जो कौम भी पीछे की तरफ बंध जाती है वह कौम आगे चलने में असमर्थ हो जाये तो आश्चर्य नहीं। जन्म होगा भविष्य में, लेकिन भविष्य में जन्म तभी हो सकता है जब अतीत के मुर्दा घर से, अतीत के मरघट से हमारा छुटकारा हो जाये।

१९१७ में रूस के लोगों ने तय किया कि हम पीछे की दुनिया को नमस्कार करते हैं और एक नयी सभ्यता को हम जन्म देंगे तो पचास वर्षों में रूस ने इतनी शक्ति पैदा की जितनी पांच हजार वर्ष का पुराना रूस कभी पैदा नहीं कर सकता था। और उसका राज ? उसका राज कम्युनिज्म नहीं है, उसका राज साम्यवाद नहीं है। उसका राज एक छोटी सी बात में है और वह यह है कि १९१७ में रूस के जवान ने तय कर लिया कि अब हम पीछे की तरफ नहीं देखेंगे, अब हम आगे की तरफ देखेंगे। अमरीका जमीन पर सबसे नयी कौम है। अमरीका का कुल इतिहास तीन सौ वर्ष पुराना है और हमें शर्म भी नहीं आती कि हम ३०० वर्ष पुरानी सभ्यता के सामने, तीन सौ वर्ष पुराना कहना भी गलत है, कहना चाहिए तीन सौ वर्ष नया है। तीन सौ वर्ष में कोई पुराना नहीं होता, तीन सौ वर्ष पुरानी सभ्यता के सामने हम जो दस हजार वर्षों से जमीन पर हैं भिक्षा के हाथ फैलाये खड़े हों तो थोड़ा विचारणीय है कि कहीं कोई भूल हो गयी है। अमरीका के पास इतनी समृद्धि का जो आकाश टूट पड़ा और इतनी शक्ति अर्जित हो सकी उसका कारण क्या है ? उसका कारण सिर्फ एक है कि अमरीका के पास पीछे देखने का कोई इतिहास नहीं है, अतीत नहीं है। अमरीका के पास कोई पास्ट नहीं है। अगर वह बहुत पीछे जाय तो वाशिंगटन से पीछे नहीं जा सकते। अगर बहुत याद करें तो वाशिंगटन, लिंकन, दो चार नाम के सिवाय उनके पास याद करने को कुछ भी नहीं है। अमरीका के पास पीछे जाने के उपाय नहीं हैं इसलिए आगे उन्हें जाना पड़ा और रूस के पास पीछे जाने का उपाय था लेकिन उसने वह रास्ता छोड़ दिया और आगे उसे जाने का रास्ता खुल गया। आज चीन भी दस वर्षों में अद्भुत गति किया है। दस वर्षों में चीन ने भी जमीन के बहुत पिछड़े हिस्से से पृथ्वी के बहुत प्रमुख हिस्से में हाथ बंटा लिया है। आज पृथ्वी की अग्रगण्य शक्तियों में वह खड़ा हो गया है और उसका भी कोई और कारण नहीं है। सिर्फ कारण एक है। जो कौम भी अपने अतीत के प्रति अपनी आंखों को हटा लेने में समर्थ हो जाती है उसका भविष्य का द्वार खुल जाता है और जो शक्ति अतीत के चिंतन में व्यर्थ ही व्यय होती है वह शक्ति भविष्य के निर्माण में संलग्न हो जाती है। **इस देश के सामने, इस देश के युवकों के सामने पहला काम तो यह है कि भारत को उसके अतीत से मुक्त करना है। अगर एक बार हमारी शक्ति पीछे की तरफ से लौट आये और आगे की तरफ गतिमान हो जाय तो कोई नहीं कह सकता कि आने वाले बीस पच्चीस वर्षों में पृथ्वी की बड़ी शक्ति नहीं हो सकती। कोई भी नहीं सोच सकता था आज के पचास साल पहले कि रूस की कोई शक्ति हो सकती है और कोई नहीं सोचता था आज के पन्द्रह साल पहले कि चीन भी कोई शक्ति हो सकता है।** कोई नहीं सोचता आज कि भारत कभी शक्ति हो सकेगा। लेकिन भारत भी एक शक्ति हो सकता है लेकिन मनुष्य के मन की जो प्रक्रिया है काम करने की, अगर उसके विज्ञान को हम न समझे तो यह नहीं हो सकेगा। हम अब भी पीछे की तरफ ही देखे चले जाते हैं। हमारा सारा का सारा व्यक्तित्व अतीतोन्मुख पास्ट सेंटर्ड है जबकि ध्यान रहे, पीछे की तरफ देखना बुढ़ापे का लक्षण है। कभी आपने नहीं देखा होगा कि बूढ़ा आदमी भविष्य की तरफ देखे और अगर कोई बूढ़ा आदमी भविष्य की तरफ देखता हुआ मिल जाय तो समझ लेना कि उसे उम्र बूढ़ा नहीं कर सकी। बूढ़ा आदमी अतीत की तरफ देखता है आराम कुर्सी पर बैठकर, रिटायर होकर पीछे की तरफ देखता है। वे दिन जो उसने जिये, वे प्रेम जो आये और गये।

यश और पद और पदवियां और अतीत के रास्ते पर उड़ी हुई धूल को लौटकर देखता है। पीछे देखना बूढ़े आदमी का लक्षण है। बच्चे भविष्य की तरफ देखते हैं। असल में भविष्य की तरफ देखना नये होने, ताजे होने, जवान होने के स्पष्ट लक्षण हैं। अगर पूरी कौम पीछे की तरफ देखने लगे तो वह कौम मर ही जायेगी। दस हजार वर्षों से पृथ्वी पर जिनकी सभ्यता है वे अपनी रोजी रोटी भी नहीं जुटा सके हैं, कपड़े भी नहीं जुटा सके हैं। वे अपने खाने पीने का इन्तजाम भी नहीं कर सके। और दूसरी बातें तो करनी असंभव हैं क्योंकि बाकी सब बातें अतिरिक्त ऊर्जा से होती हैं। जब तक कोई कौम रोजी रोटी, कपड़े न जुटा सके तब तक कुछ और नहीं कर सकती। यह सब हो जाय तभी चेतना ऊपर उठती है। तब वह धर्म और विज्ञान और संगीत और कला और साहित्य में गति करती है। हम अत्यन्त दीन, दरिद्र की भांति खड़े हैं और कल भी क्या हमें ऐसे ही खडे रहना है, यह सवाल पूछ लेना जरूरी है। आज अमरीका के चार किसान मेहनत कर रहे हैं तो एक किसान का गेहूं हमें मिल रहा है। तब हम किसी तरह जिन्दा हैं। लेकिन अमरीका हमें कितनी देर तक गेहूं दे सकेगा। अमरीका की जनता खुद चिन्ता और विचार में पड़ गयी है। अमरीका के बड़े विचारकों ने यह सवाल उठाना शुरू किया है कि हम कितनी देर तक भारत जैसे बड़े मुल्क को रोटी दे सकेंगे। १९७८ के बाद नहीं। अमरीका के एक बड़े चिन्तक ने अभी घोषणा की है कि जिस दिन अमरीका भारत को गेहूं देना बन्द कर देगा उसी दिन भारत में इतने बड़े अकाल की संभावना है जिसमें दस करोड़ लोग भी मर सकते हैं।

मैं दिल्ली में था। एक बड़े नेता को कहा। उन्होंने कहा १९७८ बहुत दूर है, अभी तो १९७२ निपट जाय तो बहुत है। वह १९७२ की चिन्ता में संलग्न हैं। भारत के नेता को चुनाव से ज्यादा और कोई महत्वपूर्ण सवाल नहीं है। भारत के युवकों को सोचना पड़ेगा और ठीक भी है। शायद १९७८ तक दिल्ली में आज जो भी नेता हैं उनमें से एक भी नहीं होंगे इसलिए उनके लिए वह सवाल भी नहीं है। वे सब इस चिन्ता में हैं कि उन्हें राज्य के द्वारा दफनाने का उपाय कैसे हो सके, इसलिए कोई बूढ़ा आदमी कुर्सी से हटना नहीं चाहता है क्योंकि कुर्सी पर रहते मर जाय तो राज्य के सम्मान के साथ मरता है, कुर्सी से नीचे हटकर मर जाय तो अखबार में पता भी नहीं चलता कि वह आदमी कब मर गया और जिन्दा था भी कि नहीं। हिन्दुस्तान का सारा नेतृत्व बूढ़ा है और उस बूढ़े नेतृत्व को कोई चिन्ता नहीं है हिन्दुस्तान के भविष्य की। वह अपने ही मरने की व्यवस्थित योजना में संलग्न है। कौन कौन राजघाट पर दफनाये जा सकेंगे इसकी चिन्ता में संलग्न हैं। लेकिन भारत के युवक को सोचना पड़ेगा। उसे जीना है कल, और उस दुनिया के साथ जो रोज ताकतवर होती चली जा रही है।

अमरीका चांद पर उतरा है और एक आदमी के पैर चांद पर पड़ सके इसके लिए १८० अरब रु० खर्च करने पड़े हैं। एक तरफ इतनी समृद्धि है। यह बिल्कुल लग्झरी है। चांद पर उतरने का अभी कोई प्रयोजन नहीं है लेकिन एक आदमी चांद पर उतर सके और पहला झंडा अमरीका का गड़ सके उसके लिए १८० अरब रुपये खर्च कर सकता है। एक तरफ हम हैं कि हम अपने पेट भरने के लिए भी कुछ खर्च करने की सुविधा हमारे पास नहीं है और सारी दुनिया के कर्जदार होते चले जाते हैं, सारी दुनिया के सामने भीख मांगते चले जाते हैं, एक युनिवर्सल बेगर की हमारी हैसियत हो गयी है, विश्व भिक्षुक की। ऐसे पुराने दिनों से हमारे महापुरुष भीख मांगते रहे लेकिन उन महापुरुषों ने कभी भी न सोचा होगा, न बुद्ध ने, न महावीर ने, न विनोबा ने, कभी नहीं सोचा होगा कि ऐसा वक्त भी आयेगा कि पूरा देश भिखारी हो जायेगा और पूरा देश भिक्षा मांगने पर जियेगा। वैसे हमारे शास्त्रों में लिखा है कि भिक्षा की वृत्ति श्रेष्ठतम है। बाकी सब वृत्तियों में कभी चोरी, झूठ, बेईमानी भी करनी पड़ती है। भिक्षा की वृत्ति एकदम पवित्र है। ऐसा लगता है कि शास्त्रों की यह बात पूरे देश ने ही स्वीकार ली है। हम सारी

दुनिया में भीख मांगने का काम कर रहे हैं। यह कितने दिन चलेगा ? यह ज्यादा देर नहीं चल सकता है। चलना भी नहीं चाहिए। मैं तो यह मानता हूं कि जो हमारी सहायता कर रहे हैं वह हमारे मित्र नहीं हैं। सारी दुनिया को हमें सहायता करने से इन्कार कर देना चाहिए। मैं तो यह मानता हूं कि सारी दुनिया को कह देना चाहिए कि तुम समझो तुम्हारा काम समझे। तुम बड़े आध्यात्मिक लोग हो, तुम बड़े ज्ञानी हो, जगत गुरु हो। तुम अपनी व्यवस्था खुद ही करो। तुम्हारी संस्कृति बड़ी महान है, तुम खुद उसे बचाओ। एक गेहूं का दाना दुनिया से भारत की तरफ नहीं आना चाहिए और न सहानुभूति की एक नजर आनी चाहिए तो शायद उस परेशानी में हम सब चिन्तन करें और शायद आगे के लिये कुछ करें। लेकिन उनकी दया हमारे लिए महंगी पड़ रही है। हम उनकी दया के नीचे ऐसे निश्चिन्त हो गये हैं जैसे धूप में मरुस्थल में चलने वाला कोई यात्री किसी वृक्ष की छाया के नीचे बैठकर भूल जाय कि चारों तरफ जलती हुई धूप है और मरुस्थल है। यह छाया बहुत देर टिकने वाली नहीं है क्योंकि उधार छायाएं बहुत देर टिक नहीं सकतीं। और उधार छायायें बहुत जल्दी खतरनाक सिद्ध होती हैं। तो मैं आपसे कहना चाहता हूं कि युवक क्रांति दल युवकों के विचार करने के लिए और भारत को अतीत से छुड़ाने के लिए और भविष्योन्मुख करने के लिए विचार का एक वातावरण सारे देश में पैदा करे। विचार की एक क्रांति जरूरी है। इस देश में विचार की क्रांति कभी हुई ही नहीं। वैचारिक क्रांति का हमें समझ में ही नहीं आता कि क्या अर्थ होता है। तो दूसरी बात आपको कहना चाहता हूं कि वैचारिक क्रांति के लिए एक वातावरण जन्माना है। वैचारिक क्रांति का अर्थ होता है, जिन विचारों के आधार पर हम अब तक जीते थे, जरूर उन विचारों में कहीं कोई बुनियादी भूल है अन्यथा हम इतनी बुरी तरह दलित, पीड़ित, दास और गुलामी से न गुजरते। हमारे मूल विचारों की जड़ में कहीं न कहीं कोई भूल है। हम कहीं न कहीं गलत सोचने के आधार पर अपने देश का भवन खड़ा कर लिए है। कुछ बातें मैं सोचना चाहता हूं।

भारत हजारों साल से पदार्थ का, मैटर की निन्दा कर रहा है, उपेक्षा कर रहा है। जो कौम पदार्थ का निन्दा और उपेक्षा करेगी वह कौम दीन और दरिद्र हो जायेगी यह सुनिश्चित है। अगर कोई कौम शरीर की निन्दा करने लगे तो वह कौम शरीर से कमजोर हो जायेगी। दीन हीन हो जाय, यह भी आश्चर्य नहीं। हम हजारों साल से शरीर के विरोध में, पदार्थ के विरोध में खड़े हैं और ध्यान रहे, आत्मा का मंदिर शरीर के द्वारा और कहीं खड़ा नहीं हो सकता है और यह भी ध्यान रहे कि अध्यात्म की ऊंचाइयां छूनी हों तो भी पदार्थ की नींव पर उन ऊंचाइयों को छूने के प्रयास किये जा सकते हैं। कोई एक मंदिर बनाये और कहे कि हमें मंदिर में सिर्फ स्वर्ण शिखर ही रखने हैं, पत्थरों की नींव नहीं डालना है तो वह मंदिर कभी खड़ा नहीं होगा। स्वर्ण शिखरों से मंदिर खड़े नहीं होते। पत्थरों का नींव भरनी पड़ती है। नींव जमीन में छिप जाती है दिखायी भी नहीं पड़ती है, फिर ऊपर स्वर्ण कलश भी चढ़ाये जा सकते हैं। अध्यात्म जीवन का शिखर है और पदार्थ जीवन की नींव है। यह देश हजारों साल से शरीर और पदार्थ को इन्कार कर रहा है इसलिए हम विज्ञान को कोई जन्म नहीं दे सके और जो कौम विज्ञान को जन्म नहीं सकेगी वह धीरे धीरे शक्तिहीन, बीमार और दरिद्र हो जायेगी क्योंकि विज्ञान तरकीब है स्वस्थ होने की, विज्ञान तरकीब है समृद्ध होने की। पदार्थ के इन्कार ने हमें अवैज्ञानिक बना दिया और पदार्थ के इन्कार ने हमें आध्यात्मिक बना दिया होता तो भी ठीक था, वह भी नहीं हो सका क्योंकि दीन दरिद्र लोग आध्यात्मिक नहीं हो सकते। अध्यात्म आखिरी लग्झरी है, अध्यात्म समृद्धि का आखिरी विलास है। जब जीवन की सब जरूरतें पूरी हो जाती हैं और कोई जरूरत शेष नहीं रह जाती तब परमात्मा की जरूरत पैदा होती है। वह अंतिम जरूरत है जो आदमी में पैदा होती है। इसलिए मैं कहता हूं कि रूस आने वाले पचास वर्षों में आध्यात्मिक होने को मजबूर हो जायेगा, यद्यपि रूस के नेता ऐसा नहीं सोचते और रूस के नेता सोचते हैं कि रूस पूर्ण भौतिकवादी है, लेकिन आने वाले पचास वर्षों में रूस निरंतर आध्यात्मिक होता

चला जायगा। उसे होना पड़ेगा। आने वाले पचास वर्षों में अमरीका में नये से नये मंदिर निर्मित होंगे। उसका कारण है कि जब कोई कौम पूरी समृद्धि हो जाती है और जब जीवन के नीचे की जरूरतें पूरी हो जाती हैं तो ऊपर की जरूरतों की याद आनी प्रारम्भ होती है। जब पेट भर जाता है तो संगीत भी जन्मता है और जब तन ढंक जाता है तो आत्मा को ढंकने का ख्याल भी पैदा होता है। और जब जिन्दगी की पृथ्वी पर सब सुविधा हो जाती है तो आंखें आकाश की तरफ उठनी शुरू हो जाती हैं। मनुष्य निरंतर खोजना चाहता है। मनुष्य एक खोज है और जब पदार्थ की खोज पूरी होने लगती है तो परमात्मा की खोज शुरू हो जाती है। भारत पदार्थ को, धन को, समृद्धि को इन्कार करके आध्यात्मिक नहीं हो पाया। वैज्ञानिक तो हो ही नहीं सकता। इस देश में पुनर्विचार और विचार की क्रान्ति पैदा करने का अर्थ है, हमने अब तक जिन आधारों पर अपने को सोचा और समझा है उन आधारों को फिर से हिला कर देखने की जरूरत है। तो मैं आपसे कहना चाहता हूं कि भारत में भौतिकवाद की एक अनिवार्य लहर आवश्यक है और ध्यान रहे, भौतिकवाद और अध्यात्मवाद में कोई विरोध नहीं है। शरीर और आत्मा में कोई विरोध नहीं है। अगर शरीर और आत्मा में विरोध हो तो दोनों एक क्षण साथ न रह सकें और परमात्मा और पदार्थ को जन्म न दे। और संसार और मोक्ष में भी कोई विरोध नहीं हो सकता अन्यथा संसार कभी का मिट जाय, सिर्फ मोक्ष रह जाय। सीढ़ियां हैं, विरोध नहीं है। शरीर पहली सीढ़ी है, पदार्थ पहली सीढ़ी है, परमात्मा दूसरी। शरीर पर ही यात्रा करके आत्मा तक पहुंचना होता है और पदार्थ की यात्रा करके परमात्मा तक पहुंचना होता है। भारत ने एक बुनियादी भूल की है सिर्फ परमात्मा में जीने की उसका परिणाम बहुत मंहगा हुआ है। हमें अपने विचार के सारे आधार बदल देने पड़ेंगे। हमें फिर से सोचना पड़ेगा। तो भारत को एक भौतिकवादी चिन्तन के जन्म की जरूरत है। अध्यात्मवाद के विरोध में नहीं, अध्यात्मवाद की बुनियाद बनाने के लिए।

दूसरी बात, भारत हजारों साल से इतना दुख में रहा है, इतनी पीड़ा में रहा है कि उसने धीरे धीरे दुख और पीड़ा को भी सम्मान देना शुरू कर दिया है और जब कोई समाज दुख और पीड़ा को सम्मान देने लगे तो उसकी सुख की खोज बन्द हो जाती है। भारत ने इतना दुख सहा है कि धीरे धीरे उसने दुख को ही जीवन मान लिया है। हम ऐसा समझने लगे हैं कि दुख ही जीवन है और जब कोई ऐसा समझने लगे कि दुख ही जीवन है, जब कोई ऐसा समझने लगे कि बीमारी ही स्वास्थ है तो फिर स्वास्थ्य के उपाय बन्द हो जायेंगे और जब कोई ऐसा समझने लगे कि दुखी होना पृथ्वी पर अनिवार्य है। पृथ्वी पर सुखी नहीं हुआ जा सकता तो फिर पृथ्वी पर सुख को पैदा करने के श्रम, चेष्टा और संकल्प बन्द हो जायेंगे। निरन्तर दुख में रहने के कारण हमने दुख को सम्मान देना शुरू कर दिया है। हमने नये नये नाम रख लिये हैं दुख के लिए। अगर कोई आदमी दुखी है, दरिद्र है, दीन है और अपनी दीनता अपने दुख और दरिद्रता को मिटाने के लिये कुछ भी नहीं करता है, बल्कि उसे धारण कर लेता है तो हम कहते हैं परम संतोषी है। वह परम जड़ को हम परम संतोषी कहते हैं। मनुष्य की बुद्धिमत्ता इसमें निर्भर है कि वह अपने दुख को कितना कम करे। अपने सुख को कितना बढ़ा ले। मनुष्य के जीवन की यात्रा निरंतर सुख को बढ़ाने की यात्रा है। पहले दुख से सुख और फिर सुख से आनन्द। लेकिन जो दुख में ही जीने लगेगा वह सुख को नहीं पहुंचेगा और जो सुख को नहीं पहुचता वह कभी आनंद तक नहीं पहुंचता। दुख से जो बचता है एक दिन सुख पर पहुंचता है और सुख पर पहुंचता है तो अचानक पाता है कि सुख भी दुख का ही एक नाम है और तब वह आनन्द की यात्रा में आगे बढ़ता है। हम दुख में ही संतुष्ट हो गये हैं। अगर कोई आदमी दुख में संतुष्ट है तो हम उसका बड़ा आदर करते हैं। अगर ऐसे लोगों को आदर मिलेगा तो फिर ठीक है, दुख के बाहर जाने का कोई मार्ग नहीं रह जायेगा और यहीं तक नहीं कि लोग दुख में संतुष्ट हों ऐसे लोग भी हैं जो अपने ऊपर स्वेच्छा से दुख आरोपित करते हैं। उनको हम

तपश्चर्यावाला कहते हैं। जो दुख में जीते हैं और शांति से जी लेते हैं उनको कहते हैं सहिष्णु, संतोषी और जो लोग उनसे भी आगे बढ़ जाते हैं कि दुख को निमंत्रण दे आते हैं। कांटे बिछाकर बिस्तर बना लेते हैं, नंगे धूप में खड़े हो जाते हैं, भूखे मरते हैं या उपवास करते हैं उनको हम कहते हैं, वह तपश्चर्यावाला है। इनको हम परम आदर देते हैं। जब कोई कौम ऐसे लोगों को आदर देने लगे जो दुख को बुलाकर घर ले आते हों तो वह कौम पागल हो जायेगी, विक्षिप्त हो जायेगी। यह पागलपन का लक्षण है और कुछ नहीं। स्वस्थ मनुष्य दुख से मुक्त होना चाहता है अस्वस्थ मनुष्य दुख और बुलाकर घर ले आता है। कोई भी स्वस्थ चित्त व्यक्ति दुख को आमंत्रण नहीं देता, स्वस्थ चित्त व्यक्ति दुख के ऊपर उठने का निरंतर प्रयास करता है। रुग्ण चित्त साइकोटिक न्यू-रोटिक जिसको हम कहें जिसके मन में कुछ रोग पैदा हो गया है वही दुखको निमंत्रण दे आता है। अगर एक आदमी के पैर में कांटा गड़ता हो तो वह आदमी कांटे को निकालेगा लेकिन ऐसा आदमी हो सकता है जो संतुष्ट कर ले कि कांटा लग गया है तो ठीक है, तो हम उसे आदर देंगे। इस देश ने धीरे धीरे आदर इतना दिया है कांटा लगे आदमी को कि कुछ लोग जिनके पैर में कांटा नहीं लगे हैं वे जाकर कांटा लगा लेते हैं क्योंकि इस देश में दुखी हुए बिना आदर नहीं मिल सकता है। अगर कोई आदमी पैदल यात्रा करने लगे तो हम बहुत आदर देते हैं लेकिन हमें पता नहीं कि जिस देश में पैदल यात्री को आदर मिलेगा उस देश में राकेट पैदा नहीं होगा और जितने पद यात्री है वे सब देश के दुश्मन हैं क्योंकि वह राकेट को उस देश में पैदा नहीं होने देंगे। आदर मिलेगा पदयात्री को तो चांद पर जाने के लिये कोई पदयात्रा तो हो नहीं सकती। चांद पर जाने के लिए तो राकेट चाहिए लेकिन राकेट तो वे लोग विकसित करेंगे जो निरंतर आवागमन के लिए श्रेष्ठतम साधनों का विकास करें। पैर आदमी का निकटतम साधन है, वह प्रकृति से मिला है जिसमें कोई विकास करने की जरूरत नहीं है। **अगर पदयात्री को हमने आदर दिया तो हम यह कह रहे हैं कि जैसा आदमी को प्रकृति ने बनाया है वह आदर योग्य है फिर विकास का उपाय नहीं रह जाता। विकास का उपाय तो तभी निकल सकेगा जब हम अपने आदर के बिन्दु बदलें। भारत में दुखी आदमी का आदर हमारे प्राण लिए ले रहा है। यह आत्मघाती है।**

भारत में सुख का सम्मान बढ़ना चाहिए। विचार का हमें नियम बदलना पड़ेगा। दुखी आदमी को आदर देना बन्द करना पड़ेगा। दुख को वरण करने वाले आदमी को तपश्चर्या में रत है ऐसा कहना बन्द करना पड़ेगा और मैं आपसे कहता हूं, जिस दिन आप आदर देना बन्द कर देंगे आपके सौ तपस्वियों में से निन्यानवे एकदम विदा हो जायेंगे, उनका कोई पता नहीं चलेगा कि कहां चले गये। आपका आदर उनको इतनी मूढ़ता में घिरा रखने में सहयोगी होता है। तो मैं आपसे कहता हूं, किसी भी मूढ़तापूर्ण बात को आदर देने लगें तो गांव में ऐसे लोग पैदा हो जायेंगे कि जो वह काम भी करके दिखा देंगे।

गांधी जी के आश्रम में एक सज्जन थे भंसाली। वे छः छः महीने तक गाय का गोबर खा के ही रह जाते थे। उनको गाँधी जी भी आदर देते थे, पूरा आश्रम आदर देता था कि वे महान तपस्वी हैं। फिर उनका पागलपन बढ़ता ही चला गया, फिर वे गाय का गोबर ही खाने लगे और जब उन्होंने देखा कि गाय का गोबर खाने के कारण उनकी तपश्चर्या की बड़ी ख्याति पहुंच रही है और ऐसी हालत आ गयी कि गांधी जी के आश्रम में कोई आये तो पहले भंसाली को दर्शन करने जाये क्योंकि वह महान हैं। इतने तो गांधीजी भी त्यागी नहीं थे। गोबर तो वह भी गऊ का न खाते थे। अगर कोई मुल्क समझदार हो तो भंसाली जैसे लोगों को पागलखाने में इलाज करवाना चाहिए लेकिन मुल्क नासमझ है और मुल्क ने न मालूम कैसे नियम बना रखे हैं कि वह ऐसे लोगों को आदर दिये चले जा रहा है। फिर उनका पागलपन बढ़ता चला जाता है, फिर उनकी विक्षिप्तता बढ़ती चली जाती है, फिर वे अपने हाथ से दुख की नयी नयी ईजादें करने लगते हैं। दुख

की ईजाद नहीं करनी है। बहुत दुख हम झेल चुके हैं। अब हमें सुख की ईजाद करनी है और सुख की ईजाद करनी है तो दुख को, तप को आदर देना बन्द करना पड़ेगा। भारत को गरीब बनाये रखने में भारत के तपस्वियों का बुनियादी हाथ है क्योंकि जब तक कोई पूरी कौम सुख को प्रेम न करे तब तक सुख के साधन पैदा नहीं किये जा सकते और जब तक पूरी कौम सुख के लिए संलग्न नहीं हो जाये तब तक कोई सुख के साधन निर्मित नहीं हो सकते। हम सुख से भयभीत क्यों हैं? सुख की खोज करने वाला पापी मालूम पड़ता है। ऐसा मालूम पड़ता है कि दुख की खोज करना है। क्या पाप और पुण्य की यह परिभाषा जारी रखनी है? या इस परिभाषा को बदलना है। युवकों को इसको बदलने की दिशा में कदम उठाना पड़ेगा। सुखी आदमी को अपने मन में आत्म निन्दा की कोई जरूरत नहीं है, हिन्दुस्थान की हालत उल्टी है। यहां अगर कोई आदमी सुख खोज लेता है तो अपने आप को निन्दित समझता है। वह समझता है कि मैं कमजोर हूं, पापी हूं, वासना-ग्रस्त हूं इसलिए सुख खोज रहा हूं नहीं तो मैं भी तपश्चर्या करता। इसलिए सुखी आदमी को आप देखेंगे कि दुखी आदमी के पैरों में जाकर सिर रखता मिलेगा। हिन्दुस्तान के नंगे साधु के पास हिन्दुस्तान का करोड़पति सिर झुकाता हुआ मिलेगा। उसका और कोई कारण नहीं है, यह आत्मा निन्दित है। यह समझ रहा है कि मैं बड़ा पापी हूं, यह बड़ा पुण्यात्मा है। मैं कमजोर आदमी हूं, इस जन्म में नहीं अगले जन्म में अपनी तपश्चर्या करूंगा। जब तक नहीं बनता है, तब तक कम से कम तपस्वी के पैर तो छू लें।

हिन्दुस्तान में सुख की कोई प्रतिष्ठा नहीं है, सुख अप्रतिष्ठित है इसलिए सुख कैसे हम पैदा कर पायेंगे। सारी दुनिया सुख को एक तरह की प्रतिष्ठा देती है और ध्यान रहे, यह मैं और भी बात आपसे कहना चाहता हूं कि जो लोग दुख को आदर देते हैं, धीरे-धीरे दूसरे को दुख देने में रस लेने लगते हैं, सेडिस्ट हो जाते हैं या मेसोचिस्ट हो जाते हैं। या तो खुद को दुख देते हैं या दूसरे को दुख देते हैं। जो आदमी सुख की निन्दा करता है वह दूसरे को सुख कभी भी नहीं दे सकता है क्योंकि जिस चीज की निन्दा की जाती है वह देना कैसे हो सकता है। **ध्यान रहे, जो आदमी खुद सुखी हो सकता है वही आदमी दूसरे के लिए भी सुख का साथी बन सकता है, अन्यथा कभी साथी नहीं बन सकता है।** तो सारा मुल्क एक दूसरे को दुख देने में उत्सुक है और हजार हजार तरकीबों से हम एक दूसरे को दुख देते हैं। हम अपने सुख की उतनी फिक्र नहीं करते जितना कोई दूसरा सुखी हो जाय और चिन्ता में रहते हैं कि कहीं कोई सुखी न हो जाय। हम उसकी चिन्ता में रत रहते हैं कि किसी आदमी को कैसे दुखी किया जाय। एक तरह का विक्षिप्त रोग पैदा हो गया है सबको दुखी करने का, दुखी देखने का। और उसके पीछे मनोवैज्ञानिक कारण हैं। हमने सुख को आदर नहीं दिया है इसलिए ऐसी स्थिति पैदा हो गयी है। मैं युवकों से कहना चाहता हूं कि वे देश को सुख की दिशा में प्रवाहित करें। खुद का सुख खोजने वाला व्यक्ति ही दूसरे के सुख की भी चिन्ता और विचार करता है।

एक फकीर सड़क पर नंगा खड़ा हुआ है। धूप में पड़ा हुआ है।। उससे जाकर कहिये कि हिन्दुस्तान बहुत गरीब है। वह कहेगा कैसी गरीबी हैं, गरीबी का क्या मतलब है? हम तो यहां भी बड़े आनन्द से हैं। एक नंगे पड़े हुए फकीर को कभी यह ख्याल में नहीं आ सकता कि देश नंगा है तो दुख में होगा। जिसने खुद के दुख को पी लिया है वह दूसरे के दुख के प्रति कठोर हो जाता है, उसकी दूसरे के दुख की संवेदना कम हो जाती है। दूसरे के दुख की संवेदना तभी हो सकती है जब हमें अपने सुख का रस हो और हमें अपने दुख की पीड़ा हो। हिन्दुस्तान में अकाल पड़ता है तो हिन्दुस्तान के मन में कोई अधिक पीड़ा नहीं पैदा होती। अमरीका, स्विटजरलैंड और इंग्लैंड में उसकी ज्यादा पीड़ा होती है। उसका कारण क्या है? उसका कारण यह है कि वे सुख का रस ले रहे हैं और सुख की दिशा में गतिमान हैं। उनकी कल्पना के बाहर है कि लाखों लोग भूखे

मर जायें। हमारी कल्पना में इसकी कोई तकलीफ नहीं है। हम तो भूखे मर ही रहे हैं। यहां भूखे मरने को हमने स्वीकार कर लिया है, जीवन मान लिया है। हमारे मन में कोई तकलीफ नहीं है। सड़क पर यदि एक आदमी भीख मांगता है तो हमारे मन में कोई पीड़ा नहीं होती है, पश्चिम के मन में पीड़ा होती है। यह अमानवीय मालूम पड़ता है कि एक आदमी को भीख मांगना पड़े। अगर सुरेन्द्रनगर में कोई भीख मांगता है तो सुरेन्द्रनगर के लोगों को ऐसा नहीं लगता है कि सुरेन्द्रनगर का अपमान है। किसी में कोई उत्सुकता छूती नहीं है। अगर कोई दो पैसे उस भिखमंगे को दे भी देता है तो दो पैसे देने में पुण्यात्मा होना अनुभव करता है। यह अनुभव करता है कि उसने कोई बड़ा पुण्य किया है। एक भिखमंगा गांव में जी रहा है इसलिए मैं पापी हूं, ऐसा कोई अनुभव नहीं कर रहा है। एक भिखमंगा के कारण अनेकों लोग दो दो पैसा दे कर पुण्यात्मा जरुर हो जाते हैं लेकिन पूरा गांव पापी है, ऐसा अनुभव नहीं करता है कि गाव में एक आदमी को भीख माँगनी पड़ रही है तो पूरा गांव किसी तरह जिम्मेदार है। यह कोई अनुभव की बात नहीं है। हमारी संवेदना कम हो गयी है और संवेदना को मारने को हम साधना समझते हैं कि आदमी जितना जड़ हो जाय, जितना बोथला हो जाय, उसकी सेंसिविटी जितनी मर जाय, धूप उसे धूप मालून न पड़े, कांटा उसे कांटा मालूम न पड़े, भूख उसे भूख मालूम न पड़े– ऐसे आदमी को हम कहेंगे, सत्य पुरुष है, परमहंस है, लेकिन ऐसा आदमी ऊार क्या मालूम होता है, उसकी संवेदनशीलता मर गयी और जिसकी अपने प्रति संवेदन–शीलता मर जाती है उसकी सबके प्रति भी मर जाती है। इसलिए हिंदुस्तान में वर्षों से सन्यासी हैं करोड़ों-करोड़ों साधु हिन्दुस्तान में है लेकिन दीनता और दरिद्रता की कोई पीड़ा पैदा नहीं होती, नहीं हो सकती। वे खुद पीड़ा के प्रति बिल्कुल सख्त कठोर हो गये हैं। हिंदुस्तान के मन को सुखाकांक्षी बनाना है दुख से ऊपर उठने की योजना उसे देनी है। संवेदनशीलता जितनी बढ़ेगी उतना जीवन सुँदर और सुखी बनाया जा सकता है लेकिन हम कहते हैं उस आदमी को परमहंस, जो वहीं पाखाना कर ले और वहीं बैठकर खाना खाले। हम कहेंगे कि यह आदमी परम ज्ञानी है, इसे पाखाने और खाने में कोई भेद नहीं रहा। लेकिन ऐसे परमज्ञानी मुल्क में बढ़ते चले जायें तो ध्यान रहे हमारा खाना और पाखाना करीब करीब एक जैसा होता चला जायगा, धीरे धीरे परिणाम यह होगा कि हम जो खायेंगे उसे दुनिया में कोई खाने को राजी नहीं होगा। जिसे हम खाना कह रहे हैं उसे पश्चिम की गाय और भैंस इन्कार कर देंगे खाने को। वहां का डायटीशियन उसको गाय को देने को भी इन्कार कर देगा कि यह खाना गाय को देने योग्य नहीं है लेकिन इसमें हम कभी नहीं समझेंगे कि हमारे भीतर जो हमने सम्मान दिये हैं वे ही सब हमें इन चीजों पर ले आये। हम जो खाना खा रहे हैं आज उसे पृथ्वी पर कोई खाने को राजी नहीं है। उसमें कुछ भी नहीं है और अगर भोजन ठीक न हो, मंदिर की प्रतिमा क्षीण हो जाये तो हैरानी क्या है, कोई आश्चर्य नहीं है कि हम आइंस्टीन पैदा नहीं कर पाते। हम आइंस्टीन पैदा कर ही नहीं सकते। आइंस्टीन पैदा करने के लिए जितनी प्रबल ऊर्जा मस्तिष्क को चाहिए वह कहाँ से आये? क्या आपने कभी सोचा है कि आदिवासियों ने अब तक एक बुद्ध या एक महावीर, कृष्ण क्यों पैदा नहीं किया? मस्तिष्क भी पदार्थ से बनता है। वह जो मस्तिष्क के अंदर ऊर्जा आती है वह भी पदार्थ से आती है। और अगर उसमें ठीक प्रोटीन, ठीक विटामिन कुछ भी न मिलता हो तो आसमान से मस्तिष्क भी नहीं उतरेगा, आत्मा भी बहुत अर्थों में भोजन पर निर्भर होती है। लेकिन इस देश ने कुछ अजीब आदत पैदा कर ली है। इसको तोड़ देना पड़ेगा और इसको तोड़ने के लिए एक आमूल विचार की जरूरत है।

युवकों से मैं कहना चाहता हूं कि इस देश के मन से पुरानी जड़ों को उखाड़ें और एक एक जड़ पर पुनर्विचार करने के लिए देश को मजबूर कर दें और किसी भी चीज को अब बिना विचार के मानने के लिए राजी ही न रहें। हो सकता है इसमें वे कुछ जड़ें टूट

जायें जो न टूटनी थीं लेकिन उनको बचाने के लिए अगर गलत जड़ें बच जायें तो ज्यादा खतरा है। मैं मानता हूं कि अगर ठीक कुछ जड़ें टूट जायें पुराने जाल के तोड़ने में तो भी चिन्ता नहीं करनी है, क्योंकि ठीक को हम फिर फिर आरोपित कर लेंगे लेकिन इतना गन्दा जाल इकट्ठा हो गया है घर में कि अगर सफाई में उस कचरे को और गंदगी को निकालने में अगर घर का कुछ ठीक सामान भी बाहर चला जाय तो चिन्ता नहीं लानी है। एक दफा कचरा साफ हो जाये तो ठीक से पुनर्निर्मित किया जा सकता है। लेकिन हमारा मुल्क बहुत डरा हुआ है, वह कहता है कि कहीं कुछ ठीक न टूट जाये। मैंने सुना है, चीन में जैसे ही माओ की सत्ता आयी उसने एक नियम बनाया। वह नियम बड़ा कीमती है। सारी दुनिया में अदालतों का यह नियम है कि चाहे सौ अपराधी छूट जायें लेकिन एक निरपराध व्यक्ति को सजा नहीं मिलनी चाहिए। सारी दुनिया का कानून यह मान कर चलता है कि चाहे सौ अपराधी छूट जायें लेकिन एक निरपराध व्यक्ति को दण्ड नहीं मिलना चाहिए। माओ चीन में आया तो उसने अदालत का पूरा नियम बदल दिया और कहा कि चाहे सौ निरपराध व्यक्तियों को दण्ड मिल जाय लेकिन एक अपराधी को हम न चूकने देंगे। इसका मूल परिणाम हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि निरपराधी को सजा देने में चिन्ता उन्होंने छोड़ दी। निरपराधी शूली पर लटक जाय, लटक जाय लेकिन अपराधी को हम न बचने देंगे। इसके परिणाम बहुत व्यापक हुए। परिणाम यह हुआ कि अपराधी का जिन्दा रहना मुश्किल हो गया। जिन्दगी के संबंध में भी हम यही कहते हैं कि कहीं एक बात न टूट जाय। तो चाहे एक ठीक बात बचाने को सौ गलत बातें बचानी पड़ें तो हम बचा लेते हैं। जिन्दगी का यह नियम हमें बदल देना पड़ेगा। मैं आपसे कहना चाहता हूं, सौ ठीक चीजें टूट जायं तो तोड़ देना है लेकिन एक गलत चीज को नहीं बचने देना है, तो हम गलत चीजों से मुक्त हो पायेंगे, अन्यथा नहीं। और ध्यान रहे, ठीक ठीक चीज फिर पैदा की जा सकती है क्योंकि जो ठीक है उसकी हमें रोज जरूरत है, उसके बिना हम रह नहीं सकेंगे, उसे हम पैदा कर ही लेंगे। हरएक ठीक चीज के पास सौ गलत चीजों का जाल खड़ा हो गया है और उस एक को बचाने के लिए उस सौ गलत जाल को बचाना पड़ रहा है। इसकी हमें हिम्मत करनी पडेगी— **विध्वंश की हिम्मत करनी पड़ेगी तो ही हम निर्माण कर सकते हैं अन्यथा निर्माण नहीं हो सकता।**

तो युवक क्रांति–दल को मेरा एक ही संदेश है कि किसी भी भांति विध्वंस की तैयारी के लिए देश को तैयार करना है। रचनात्मक कार्यक्रम बहुत हो चुके, उनसे अब क्षमा चाहिए क्योंकि ध्यान रहे, रचनात्मक कार्यक्रम सदा पुराने में जोड़ होता है। रचनात्मक कार्यक्रम सदा पुराने में एडीशन होता है। अब तो देश में विध्वंशात्मक कार्यक्रम चाहिये। कंस्ट्रेक्टिव नहीं, डिस्ट्रेक्टिव प्रोग्राम चाहिए। विनोबा जी ने इतने दिनों तक रचनात्मक कार्यक्रम चलाये। गांधीजी ने इतने दिनों तक रचनात्मक कार्यक्रम चलाया। हमें रचनात्मक शब्द बड़ा प्रेमपूर्ण लगता है। मेरे पास कुछ लोग आते हैं और कहते हैं, कुछ रचनात्मक कार्यक्रम बतलाइए। क्यों? रचनात्मक का मतलब होता है जो मौजूद है, उसमें कुछ जोड़ने वाला और जो मौजूद है, वह इतना सड़ गया है कि इसमें अब कुछ भी नहीं जोड़ना है। उसमें जोड़ने से उस मौजूद के बचने का इन्तजाम पैदा होता है और कुछ नहीं होता है। जैसे मकान गिरने वाला है। कोई कहता है, रचनात्मक कार्य करें तो क्या होगा। एक खंभा लगा के दीवाल में चार ईंटे जोड़ के एक सहारा लगा दीजिये रचनात्मक हो गया। नहीं मैं कहता हूं कि इस देश का भवन इतना जरा जीर्ण हो गया है कि अब इसको रचना में एक ईंट भी खर्च करना पागलपन है क्योंकि यह पूरा मकान तो गिरेगा, उसके साथ रचना के लिए जो ईंटे लगायी थीं वह भी फिजूल चली जायेंगी। अभी रचना नहीं करनी है। पहले एक बार इस मुल्क के मकान को पूरा गिरा देना है, फिर रचना हो सकती है। विध्वंस के लिए मुल्क का मन अगर तैयार हो जाय तो एक रचना हो सकती है। विध्वंस पहला चरण होगा, सृजन दूसरा।

अब सृजन की बात नहीं करनी है। मरे हुए मन को वह बात बहुत अपील करती है। वह मरा मन कहता है, अब जोड़ने की बात बताओ, मिटाने की बात मत करो। कुछ जोड़ो, कुछ निर्माण करो, कुछ निर्मित करो। पांच हजार साल से हम वही कर रहे हैं। उसका अंतिम परिणाम यह हुआ कि पांच हजार साल पहले बनाये हुए मकान अब भी जिन्दा हैं क्योंकि उनमें हम रचनात्मक जोड़ लगाते ही चले गये। अब उन मकानों में रहना मुश्किल है क्योंकि उन मकानों के गिर जाने का किसी भी दिन खतरा है। उनमें भीतर रहना मुश्किल हो गया है, बाहर योजना चलती रहती है कि और चार डण्डे जोड़ कर लगा लें। फिर और नये रंग रोगन कर लें। दीवाली आ गयी, फिर इसको पोत पात करके ठीक कर दें, फिर यह नया मालूम होने लगेगा, लेकिन अब यह आगे मंहगा पड़ जायेगा। सारी दुनिया ने अपने मकान बदल लिए, फिर हम अपने पुराने मकान से चिपके हुए हैं। या तो हमें यह मकान गिराना पड़ेगा या इस मकान के साथ हम सबके गिर जाने का डर है। यह मकान तो गिरेगा, कहीं ऐसा न हो कि उसके नीचे हम सब दबकर मर जायें। **इतना ही कहना चाहूंगा कि युवक अपने मन में विध्वंश के लिए भी एक आदर का भाव ले लें। सृजन के लिए आदर का भाव बिल्कुल स्वाभाविक है। विध्वंश के लिये आदर का भाव लेना जरूर क्रांतिकारी कदम है और जो भी रिव्युल्युशनरी माइण्ड है, जो भी क्रांतिकारी विचारक है वह विध्वंस की पहले तैयारी करेगा।** वह कहेगा, हम तोड़ना चाहते हैं, निर्माण करेंगे लेकिन पहले हम तोड़ेंगे। पहले हम उसको मिटा देंगे क्योंकि हम परेशान हो गये है फिर हम नये को बना लेंगे। नये मंदिर बनाने पड़ेंगे बिना मंदिरों के रहना मुश्किल है लेकिन पुराने मंदिर गिराये बिना नये मंदिर बनाने की बात भी नहीं उठानी है क्योंकि नये मंदिर बनाने की बात पुराने को गिराये बिना उठाने पर खतरा यह पैदा होता है कि सब पुराने मंदिर दीवालों पर नये रंग रोगन पोतकर घोषणा करने लगते हैं कि यह तो नये हो गये। अब और नये की क्या जरूरत है। पुराना नये की तरह कवायद करता है, वह नये की तरह रंग रोगन बनाकर प्रगट करना चाहता है कि नये की कोई जरूरत नहीं है। इस देश की जड़ों में पुरानी जड़ों को खोद लेना है, उखाड़कर फेंक देना है। हो सकता है पूरा वृक्ष गिर जाये, लेकिन जिन्दा कौमें कभी इसकी फिक्र नहीं करती कि क्या गिर जायेगा क्योंकि जिन्दा कौमें बनाने की हिम्मत सदा अपने भीतर रखती हैं। सिर्फ मरी हुई कौमें डरती है कि कुछ गिर न जाये, कुछ टूट न जाये, क्योंकि फिर हम बना तो न पायेंगे। यह डर उन्हें गिराने को रोकता है और जितना वह डरते चले जाते हैं उतना ही नये को बनाने की जगह नहीं रह जाती, नये को बनाने का उपाय नहीं रह जाता और ध्यान रहे, जब तक पुराना बना रहेगा तब तक नये को बनाने की जरूरत उतनी पीड़ादायी नहीं हो जाती कि हम नये को बनाने को निकल पड़ें। अगर पुराना मकान मौजूद है तो हम किसी तरह गुजारा करते चले जाते हैं। पुरानी संस्कृति को तोड़ देना पड़ेगा और अंतिम बात, भारत को किसी तरह भारतीयता से मुक्त करने की जरूरत है। जब तक भारत भारतीयता से मुक्त नहीं होता तब तक आधुनिक नहीं होता। आधुनिक होना हो तो भारतीयता से मुक्त होना पड़ेगा और भारतीयता से मुक्त होने में प्राणों को बड़ा कष्ट आयेगा क्योंकि हमारा सारा अहंकार भारतीय होने से जुड़ गया है। अब वह अहंकार दुनियां में नहीं टिक पायेगा। चीनी थे, जापानी थे, जर्मन थे, हिन्दू थे, मुसलमान थे, ईसाई थे, जैन थे। आदमी जैसी चीज पुरानी दुनिया में नहीं थी। आदमीयत जैसी चीज पुरानी दुनिया में नहीं थी। जगत जैसी कोई चीज पुरानी दुनिया में नहीं थी। जगत हजार खंड़ों में टूटा हुआ था। लेकिन अब यह असंभव हो गया है कि जगत हजार खंडों में टूटा रह जाय जब तक राजनीतिज्ञों की चालें थोड़े दिन और चल सकेंगी क्योंकि आदमी का मन पुराना है और राजनीतिज्ञ पुरानापन का शोषण किये चले जाते हैं तब तक राष्ट्र टिकेगा लेकिन अब राष्ट्रों का टिकना बहुत मंहगा हो गया है। अब इनका होना बहुत खतरे से भरा हुआ है। अब इनके न होने में मनुष्यता का हित है और जब तक धर्मगुरुओं की चाल चलेगी तब तक हिन्दू और मुसलमान बचेंगे लेकिन अब उनकी चाल भी ज्यादा

दिन नहीं चल सकती। हालांकि इन चालों को नयी नयी तरकीबें खोजते हैं। अगर हिन्दू मुसलमान दंगा हो जाये तो वे यह नहीं कहते कि हिन्दू मुसलमान की वजह से दंगा हो गया है। वे कहते हैं कि यह गुण्डों की वजह से हो गया है। यह गुण्डा कौन है ? इसका पता लगाना बहुत मुश्किल है। जबकि मैं आपसे कहता हूं कि सब जगह दंगे महात्माओं के कारण होते हैं, गुण्डों के कारण कोई झगड़ा नहीं होता। गुण्डे बेचारे आखिरी में फंस जाते हैं और महात्मा बड़े होशियार हैं। झगड़े के बीज बोते हैं और जब झगड़ा फैल जाता है तो अमन कमेटियां भी बनाते हैं, झगड़े को शांत भी करते हैं। एक गाय की पूंछ कट जाय किसी गाँव में तो हिन्दू मुसलमान दंगा हो जायेगा। हम कहेंगे कि गुण्डों ने दंगा कर दिया है। जबकि सच बात यह है कि जिन महात्माओं ने यह समझाया है कि गाय माता है, वह झगड़े की जड़ है। अगर गाय माता न हो तो गाय की पूंछ कट जाने से झगड़ा होने वाला नहीं है। सच तो यह है कि गाय माता न हो तो शायद कोई पागल गाय की पूंछ भी नहीं काट पाता। गाय की पूंछ भी इसीलिए कटती है, महात्माओं की वजह से। और गाय की पूंछ कटने से झगड़ा भी इसीलिए होता है, महात्माओं की वजह से। लेकिन महात्मा पीछे समझाने भी आ जाते हैं और उनके समझाने की तरकीब बहुत अच्छी होती है। वे यह नहीं कहते कि हिन्दू मुसलमान की वजह से झगड़ा है। वह यह कहते हैं कि असली हिन्दू बनो तो झगड़ा नहीं होगा, असली मुसलमान बनो तो झगड़ा नहीं होगा। जब नकली हिन्दू और नकली मुसलमान से इतना उपद्रव हो रहा है तो असली हिन्दू और असली मुसलमान कितना उपद्रव करेंगे, हिसाब लगाना बहुत मुश्किल है। जब यह सूडो नकली इतना उपद्रव करता है तो असली क्या करेंगे कहना मुश्किल है। लेकिन वे समझाये चले जाते हैं। गांधी जैसे अच्छे आदमी इस देश में हिन्दू मुसलमान को एक करने की कोशिश करते रहे लेकिन असफल रहे। असफलता का कारण जिन्ना नहीं है, असफलता का कारण हिन्दू मुसलमान नहीं है, असफलता का कारण गांधी का पक्का हिन्दू होना है। गांधी जैसे आदमी भी यह हिम्मत नहीं कर सके कि कह दें कि मैं सिर्फ आदमी हूं। अभी खान अब्दुल गफ्फार खां समझाते फिरते है लोगों को लेकिन वे पक्के मुसलमान हैं। हिन्दू मुसलमान एक हो जायें लेकिन वे यह नहीं कहते कि हिन्दू मुसलमान मिट जायें। मैं आपसे कह रहा हूं, हिन्दुस्तान के युवकों से, हिन्दू मुसलमान एक हो जायें इस झंझट में पड़ना ही मत। गांधी जैसा अच्छा आदमी एकदम असफल सिद्ध हुआ। अब तो हिन्दुस्तान के युवकों को कहना है कि हिन्दू मुसलमानों को मिटायेंगे, एक नहीं करेंगे, एक हो ही नहीं सकते। असल में उनका होना ही उपद्रव है। उनकी मौजूदगी ही खतरनाक है। आने वाले युवक को घोषणा करनी चाहिए कि मैं सिर्फ आदमी हूं न मैं हिन्दू हूं, न मैं मुसलमान हूं। फिर हम देखें कि हिन्दू मुसलमान दंगे कैसे होते हैं। लेकिन तब दोहरे नुकसान होंगे। जो महात्मा झगड़ा करवाते है वह भी दंगे के बाहर हो जायेंगे और जो झगड़े को शांत करवाते हैं वह भी दंगे के बाहर हो जायेंगे और इन दोनों महात्माओं की आपस में सांठ गांठ है, झगड़ा करने वाले और झगड़ा शांत करने वाले।

मैंने सुना है कि एक गांव में दो आदमियों ने एक नया धंधा शुरू किया है खिड़कियों के काँच साफ करने का। उनमें से एक आदमी गांव में जाकर पहले रात में सोये हुए लोगों की खिड़कियों पर डामर फेंक आता था। दो तीन दिन बाद दूसरा आदमी चिल्लाता हुआ निकलता था "खिड़कियां साफ करवाना है और लोग बाहर आते कि तुम्हारी बड़ी कृपा कि अच्छे आ गये, हम बहुत चिंतित थे कि खिड़कियां कैसे साफ होंगी। न मालूम कौन दुष्ट डामर फेंक गया है। वे दोनों पार्टनर थे। इधर एक महात्मा झगड़ा करवाता है और दूसरा महात्मा शांति करवाता है। वे दोनों धंधे के बाहर हो जायेंगे।

हिन्दू मुसलमान को मिटाने की जरूरत है। अभी हिन्दू मुसलमान एकता की बात नहीं करनी है भविष्य में। अब तो हिन्दू-मुसलमान न रह जायें इसकी कोशिश करनी है। अब तो ऐसी कोशिश करनी है कि आदमी रहें। न हिन्दू हो, न मुसलमान, न ईसाई। न हिन्दु-

स्तानी न पाकिस्तानी। हिन्दुस्तान के बच्चे नुकसान में हैं, पाकिस्तान के बच्चे नुकसान में हैं। कोई समझ की बात नहीं है कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान किसलिए लड़ते हैं। इससे ज्यादा नासमझी की बात नहीं हो सकती। लेकिन हमारी सारी ताकत इसमें लग जायेगी। जबकि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के दोनों लोग साथ हो सकते हैं और दोनों साथ होकर ज्यादा खुशहाल हो सकते हैं। अगर यह सारी जमीन इकट्ठी हो तो आज दुनिया में स्वर्ग निर्मित किया जा सकता है। विज्ञान ने वे सारे साधन दे दिये हैं कि अगर मनुष्य की मूढ़ता न जीती तो हम मनुष्य को यहीं स्वर्ग दे देंगे। अब कहीं आगे स्वर्ग खोजने की जरूरत नहीं। सारी बीमारियां हटाई जा सकती, सारी दीनता दरिद्रता मिट सकती है। सारा अज्ञान मिटाया जा सकता है और आदमी को वह सब दिया जा सकता है जैसी कि ऋषि मुनियों ने स्वर्ग में कल्पना की है। कौन सी चीज बाधा बन गयी? राष्ट्रों की सीमाएं, धर्म की सीमाएं, आइडियोलोजी की सीमाएं। और ध्यान रहे पुराने धर्म बासे पड़ जाते हैं तो नये धर्म पैदा हो जाते हैं। जैसे कम्युनिज्म नया धर्म है। हिन्दू मुसलमान पुराने पड़ गये हैं। अब झगड़े में रस नहीं है तो अमरीका और रूस नयी आइडियोलोजी नये धर्म बनाकर खड़े हो गये हैं। क्रेमलिन भी मक्का है कुछ लोगों के लिए। वह वहां भी यात्रा करने जाते हैं और बड़े प्रसन्न लौटते हैं। जैसे एक मुसलमान हज करके लौटता है वैसे एक कम्युनिस्ट मास्को होकर लौट आता है, उसकी इज्जत बढ़ जाती है, वह हाजी हो जाता है। वह मास्को हो आया। कम्युनिस्टों के मक्का मदीना होकर आ गया और वहां दर्शन कर आया नये देवताओं के नये भगवानों के। नये उपद्रव पैदा हो जाते हैं। क्या आदमी को इस सारे उपद्रव से नहीं बचाया जा सकता है?

पत्र-प्रेरणा

(आचार्य श्री द्वारा सुश्री कंचन बहिन को लिखे दो प्यारे पत्र)

प्यारी कंचन,

प्रेम। तुम्हारा पत्र पाकर अति आनन्दित हूं परमात्मा की पुकार हृदय में गूंज उठी है। अब रुकना मत।

जब वह बुला रहा है तो सरिता सागर की ओर चलती है, वैसे ही तुम्हें भी उसकी ओर चल पड़ना है।

वहां सबको मेरे प्रणाम।

रजनीश के प्रणाम
प्रभात
२।६।१९६८

प्यारी कंचन,

प्रेम। तेरा पत्र। हृदय की बूंद तैयार हो रही है कि सागर में स्वयं को खोदे। बस तू बाधा मत बनना।

फिर शेष तो प्रभु स्वयं कर लेता है।

रजनीश के प्रणाम
१६।६।६८

व्यक्तित्व की दिशा

(आचार्य श्री का गोविन्दराम सेकसरिया वाणिज्य महाविद्यालय, वर्धा का स्नेह-सम्मेलन का उद्घाटन अभिभाषण)

एक छोटीसी कहानी से मैं अपनी बात शुरू करना चाहता हूं। एक बड़ी राजधानी में सम्राट के द्वार पर बहुत बड़ी भीड़ लगी हुई थी। भीड़ सुबह ही से बढ़ती गयी और सांझ तक पूरी राजधानी वहां इकट्ठी हो गयी। जो भी आदमी आकर खड़ा हो गया, उसने हटने का नाम हीं नहीं लिया। लोग सांस रोके हुए देख रहे थे। वहां ऐसी अद्भुत घटना घट गयी कि जिसका कोई सपना भी नहीं देखा जा सके। कल्पना भी नहीं की जा सके ऐसी बात हो गयी थी। सुबह एक भिखारी ने उस सम्राट के द्वार पर भीख माँगी थी। अपना भिक्षा पात्र सम्राट के सामने फैलाया, सम्राट ने कहा था इनका पात्र अन्न से भर दो। लेकिन उस भिखारी ने कहा कि मैं एक ही शर्त पर भिक्षा लेना कबूल करूंगा। मेरे पात्र को पूरा भरना पड़ेगा। अधूरा भरा पात्र लेकर मैं इस द्वार से हटूंगा नहीं। सम्राट हँसने लगा और उसने कहा कि भीख मांगते-मांगते तुझे यह भी ख्याल न रहा कि तू सम्राट के द्वार पर खड़ा है। क्या हम तेरा छोटा सा भिक्षापात्र न भर सकेंगे। उसने अपने वजीर से कहा कि अन्न से नहीं अशर्फियों से पात्र भर दो इस दरिद्र का। उस भिखारी ने फिर कहा कि एक बार आप पुनः सोच लें मेरा पात्र पूरा भर जायगा तभी मैं हटूंगा। पूरा पात्र भर सकेंगे न? सम्राट के अहंकार को चोट लगी। उसने अपने वजीर से कहा, स्वर्ण अशर्फियों से नहीं हीरे जवाहरातों से भरदो इसके पात्र को और जब तक हीरे जवाहरात इसके बाहर न गिरने लगे तब तक रोकना मत। भिखारी को पता होना चाहिए कि वह सम्राट के द्वार पर खड़ा है। फिर वजीर गया और उसने हीरे जवाहरात लाकर उसके पात्र में डाले। पात्र में डालते ही सम्राट को अपनी भूल का पता चल गया। वे हीरे जवाहरात पात्र में गिरते ही कहीं खो गये। वह पात्र खाली का खाली रहा। सम्राट के जो खजाने अटूट थे वे सांझ तक खाली होने लगे। सम्राट जो किन्हीं बड़े सम्राटों से न हारा था इस भिखारी से हारने की स्थिति में साँझ तक पहुंच गया। वह पात्र न, मालूम कैसा था उसमें जो भी डाला जाता था शून्य और रिक्त हो जाता। फिर सांझ सम्राट हार गया। भिखारी के पैरों में गिर पड़ा और कहा मुझे क्षमा करो। मैं भूल ही गया कि आज तक किसी सम्राट की सम्पत्ति किसी भिखारी के पात्र को न भर सकी। भूल हो गयी मुझसे। मुझे क्षमा कर दो। मैं हार गया, पराजित हो गया। लेकिन जाते समय मुझे एक बात बताते जावो। इस पात्र में क्या रहस्य है और किन मंत्रों से इसे सिद्ध किया है। कौनसा जादू है। यह पात्र भरता क्यों नहीं। उस भिखारी ने कहा इस पात्र में न कोई जादू है न रहस्य। बड़ी सीधी-सी कथा है इस पात्र की। इसे मैंने मनुष्य के हृदय और मन से बनाया है। न मनुष्य का हृदय भरता है न यह पात्र भरता है।

पता नहीं यह कहानी कहाँ तक सच है। यह सच हो या न हो लेकिन यह बात सच है कि मनुष्य का हृदय कभी भरता नहीं और हम उसे जितना भरने की कोशिश करते हैं वह उतना ही खाली होता जाता है। जीवन की सध्या में हम पाते हैं कि हमने किसी गलत पात्र से होड़ कर ली। जिसे हम भरने चले थे, वह शायद भरने ही वाला नहीं था। और तब जीवन एक विषाद से, पीड़ा से भर जाता है तो कोई आश्चर्य नहीं। मैं उस शिक्षा को सम्यक् शिक्षा कहता हूं जो मनुष्य के हृदय

को भरने की कला सिखा सके। मनुष्य के जीवन की एक ही समस्या है और कोई समस्या नहीं कि उसके भीतर कुछ और है जो अधूरा अपूर्ण, अधभरा रह जाता है। मनुष्य के प्राण भरे होना चाहते हैं। फुलफिलमेंट चाहते हैं। लेकिन कुछ ऐसा है कि प्राण भरते ही नहीं और जीवन रोज रोज अधूरा-अधूरा खाली और रिक्त मालूम होता है। अर्थ-हीन मालूम होती है दौड़। सब उपाय व्यर्थ मालूम होते हैं। सब श्रम किसी रेगिस्तान में खो गया मालूम होता है। कहीं पहुंचते हुए मालूम नहीं होते। दौड़ते हैं जीवनभर और कहीं नहीं पहुंच पाते हैं। कोई उपलब्धि नहीं, कोई परिणाम नहीं। कहीं कोई मंजिल नहीं मिलती। और ऐसा मनुष्य का जीवन हो तो मौलिक समस्या, बुनियादी प्रश्न है मनुष्य के सामने क्या हम उसे पूर्ण कर लेंगे? और भर लेने की कला में दीक्षित कर सकते हैं? और जो शिक्षा यह न कर पाती हो वह शिक्षा मनुष्य को और भी विषादयुक्त करेगी, फ्रस्टेशन से भर देगी, क्योंकि जितना शिक्षित मनुष्य होगा उसमें हृदय के पात्र को भरने की उतनी ही तीव्र लालसा होगी। उतने ही उद्दाम वेग से अपने हृदय को भरने के लिये वह दौड़ेगा। इसीलिए पिछली सदी से हमारी सदी ज्यादा विक्षिप्त मालूम पड़ती है। इसमें पिछली सदियों का कोई गौरव नहीं। पिछली सदियाँ अशिक्षित थीं। अतीत का कोई गौरव नहीं है कि वे लोग दौड़ और होड़ में थे। हम ज्यादा दौड़ और होड़ में है। शिक्षा बढ़ी है। जिस मुल्क में जितनी ज्यादा शिक्षा है उतनी ही विक्षिप्तता बढ़ गयी है। अमरिका सबसे ज्यादा शिक्षित मुल्क है तो सबसे ज्यादा पागल भी। प्रतिदिन अमेरिका में १५ से ३० लाख लोग मानसिक विकारों का इलाज करवाते हैं। और ये सरकारी आँकड़े हैं और आप जानते हैं कि सरकारी आँकड़े कभी भी सच नहीं होते। न्यूयार्क में तीस प्रतिशत लोग बिना दवा लिये रात में सो नहीं पाते उन्हें यह विश्वास कठिन होता है कि लोग बिस्तर पर सोने जाते हैं और किस तरह सो जाते हैं। न्यूयार्क के मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि आने वाली सदी में इस सदी के पूरा होने ही बिना दवा लिये ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं होगा, जो सो सके। शिक्षा बढ़ती है, सभ्यता बढ़ती है, आदमी रुग्ण क्यों हो जाता है? विक्षिप्त क्यों हो जाता है? कोई कारण होगा। शिक्षा में कोई बुनियादी भूल होगी। जिस बुनियादी सवाल को हल करना चाहते हैं शिक्षा से कोई संबंध नहीं होगा, बल्कि हो सकता है जिस बीमारी को हम दूर करना चाहते हैं हमारी ऐसी शिक्षा हो जो इस बीमारी को बढ़ाती हो। और मैं आपसे निवेदन करना चाहूंगा कि वह बढ़ाती है। और तब हम दूसरे कारण खोजते हैं। नई पीढ़ियां खराब हो गयीं। कलियुग आ गया। लोगों का चरित्र गिर गया यह हो गया, वह हो गया। हम दूसरे कारण खोजते हैं और असली कारण की ओर ध्यान भी नहीं देते। जिसे हम शिक्षा कहते हैं, वह मनुष्य की बीमारी को घटाने वाली नहीं, बढ़ानेवाली है। और यह शिक्षा आज की ही है ऐसा मत सोचना। यह शिक्षा हमेशा से ऐसी ही है। फर्क जो पड़ा है, वह शिक्षा की बुनियाद और ढांचे में नहीं पड़ा है। शिक्षा का सामूहिक विकास हुआ। जनता शिक्षित हुई अधिकतर लोग शिक्षित हुए हैं। बहुजन लोग शिक्षित होते जा रहे हैं। जो लोग पिछली सदी में शिक्षित थे उनके साथ भी वही रोग थे, जो आज सारे लोगों के साथ हैं। और जिस दिन सारी पृथ्वी शिक्षित होगी उस दिन ऐसा प्रतीत होने लगेगा कि पृथ्वी एक बड़ा पागलखाना हो गई।

कुछ बातें हैं। बात यह है कि मनुष्य का हृदय महत्वाकांक्षा को प्रदीप्त करने से कभी नहीं भर सकता। जितनी महत्वाकांक्षा विस्तृत होगी, मनुष्य उतना ही रिक्त और खाली होगा। और सारी शिक्षा कुछ भी करती है तो महत्वाकांक्षा बढ़ाती है। पहले दिन से हम महत्वाकांक्षा का जहर पिलाना बच्चों को शुरू कर देते हैं। पहली कक्षा में ही उन बच्चों से अपेक्षा करते हैं कि प्रथम आओ, दूसरों को पीछे छोड़ो और तुम आगे हो जावो। और तुम पुरस्कृत होगे और सम्मानित होगे और जो पीछे छूट जायगा वह अपमानित दीनहीन रास्ते के किनारे खड़ा हो जायगा। हम क्या सिखा रहे हैं? हम सिखा रहे हैं कि जीवन का सूत्र है प्रथम होना। जीसस क्राइस्ट ने एक अद्भुत बात कही। शायद आपको ख्याल में न

आयी हो, क्योंकि जितनी बढ़िया बातें हैं, बढ़िया लोगों ने कहीं वह किसी के भी ख्याल में भी नहीं आतीं। जीसस क्राइस्ट ने कहा-धन्य हैं वे लोग जो अंतिम खड़े होने में समर्थ हैं। और हमारी पूरी शिक्षा का एक ही स्वर है धन्य हैं वे लोग जो प्रथम खड़े होने में समर्थ हैं। या तो जीसस क्राइस्ट पागल थे या हम पागल हैं। और दो के बीच तीसरा कोई विकल्प नहीं। जीसस कहते हैं वे लोग जो अंतिम खड़े होने में समर्थ हैं। अंतिम खड़े होने के मूल्य (वैल्यू) को हमारी शिक्षा नहीं सिखाती। तो फिर इस शिक्षा से कुछ भी नहीं पैदा होने वाला। क्योंकि प्रथम होने की दौड़ ही मनुष्य को विक्षिप्त करने की दौड़ है। लेकिन एक यही मूल्य मालूम होता है कि प्रथम स्थान प्राप्त कर लिया तो सब कुछ प्राप्त कर लिया। इस प्रथम होने को थोड़ा समझ लेना जरूरी है।

क्या आपने कभी सोचा है कि ३० बच्चों की कक्षा में एक बच्चा प्रथम हो जाता है तो एक बच्चा प्रथम होता है उतना ही नहीं २९ बच्चे प्रथम नहीं हो पाते हैं? कभी ध्यान किया है कि एक बच्चा प्रथम होकर आनंदित और उत्साह से भर जाता है, २९ बच्चे जो प्रथम नहीं हो पाये हैं वे किस चीज से भर जाते होंगे। वे दुख से, विषाद से, फ्रस्ट्रेशन से, चिन्ता से, ऐंगझायटी से भर जाते हैं। तो पूरे मुल्क में २०-२५ लोग प्रथम होने का आनंद उठा लेंगे और शेष बहुजन समाज दुखी हो जायगा, चिन्तित हो जायगा, पीड़ित हो जायगा। कुछ थोड़े लोग प्रथम होने का सुख और फूलमालायें पा लेंगे, और शेष सारे लोग हीनता और दीनता से ग्रिन्फीरीआरिटी से भर जायेंगे। और क्या आपको पता है कि जो आदमी अपने भीतर हीनता का अनुभव करने लगता है, जो समाज उसे दीन-हीन होने को मजबूर करता है उस समाज से वह बदला लेकर रहेगा, उसका प्रतिशोध लेकर रहेगा। ये बच्चे जो मकान तोड़ रहे हैं और बसें जला रहे हैं और शिक्षकों का अपमान कर रहे हैं ये हीनता का प्रतिशोध और बदला ले रहे हैं। ये पीछे छूट गये लोगों का क्रोध है। ये प्रथम नहीं हो पाये लोगों का वैमनस्य है। और वह व्यवस्था जो एक को प्रथम करती हो उन उनतीस की कीमत पर, जो एक को आगे लाती हो, २९ के बलिदान पर वह सारी शिक्षा हिंसात्मक है, व्हायलेन्ट है। उस शिक्षा से कभी कोई प्रेम पूर्ण समाज और व्यक्ति पैदा नहीं हो सकते। इन लोगों का कसूर नहीं हैं। ये बच्चे की भूल नहीं है। यह भूल पूरी शिक्षा के ढांचे के ही गलत और पागल होने की है। लेकिन पिछली सदी में इसका पता नहीं चल सका, क्योंकि ये छोटे प्रमाण में था। बड़ा जन-समूह अशिक्षित था और थोड़े से ही लोग पागल भी हो जाते थे तो इतनी बड़ी भीड़ में उनका पता भी नहीं चल सकता। अब भीड़ शिक्षित हो गयी है। अब आदमी पागल हो तो उनका पता चलना बहुत जरूरी हो गया है।

यह सवाल आज का नहीं है, अनेक लोग यह सोचते हैं कि पहले सब ठीक था अब गलत हो गया है। वे कोई वजह नहीं बता सकते गलत हो जाने की। कौन कहता था कि पहले सब ठीक था? किसने कहा आपको? बुद्ध ढाई हजार साल पहले हुये। वे लोगों को क्या समझा रहे हैं? वे लोगों को समझा रहे हैं चोरी मत करो, हिंसा मत करो, बेईमानी मत करो, हत्या मत करो। यदि लोग अच्छे थे तो ये शिक्षायें किसको दी जा रहीं थीं? ये टीचिंगस् किसके लिये हैं? बुद्ध का दिमाग खराब था या लोग तो अच्छे थे और वे लोगों को समझा रहे थे कि अच्छे हो जाओ। दुनिया की पुरानी से पुरानी किताब चीन में है, जो ६५०० वर्ष पुरानी है। उस किताब की अगर भूमिका पढ़ें तो ऐसा मालूम होता है कि आज कल ही किसी ने लिखी है। आज तक दुनिया में ऐसी कोई किताब नहीं है, जिसमें लिखा हो कि आज कल के लोग अच्छे हैं। है कोई किताब? सारी दुनिया में किसी भी युग की और किसी भी सदी की? किसी शिक्षक ने कहा है आज तक? महावीर ने, क्राइस्ट ने, कृष्ण ने, कन्फ्यूशिअस ने, किसी ने यह कहा है कि आज कल के लोग अच्छे हैं और धन्य भाग हमारे जो इस सदी में पैदा हुये? आज तक सभी शिक्षक यह कहते रहे-अभागे हैं हम लोग जो इस सदी में पैदा हुये हैं। पहले के लोग अच्छे थे। यह अतीत कब था? यह अतीत की मिथ्या क्या हमें धोखा देती है। और जिस अतीत पर सब कुछ कहते है कि अतीत अच्छा था।

और वर्तमान में जो भूल हो गई है उसको समझने से मुश्किल हो जाता उसको समझना कठिन हो जाता, वर्तमान अतीत से पैदा होता है। मित्रो, वर्तमान आसमान से नहीं टपकता है। वर्तमान कहीं आकाश से नहीं उतरता है। वर्तमान अतीत की शृंखला है। हम जो आज हैं, हम उस आदमी के फल हैं जो कल था। हम उसी के वृक्ष पर लगे हुये पत्ते और फल हैं जो कल था आदमी, उसकी हम संतान हैं। उसी शृंखला की अगली कड़ी हैं, हम हमारी बुनावट और हमारा बनाव और हमारा व्यक्तित्व उससे पैदा हुआ है। जो रोग हमें पकड़े हुये है, हो सकता है कि वह पूरी तरह प्रकट हुआ है आज लेकिन वह रोग कल भी मौजूद था और कल भी विकसित था। उसके कीटाणु हमेशा मौजूद थे। आज की यह सारी दुर्व्यवस्था और दुर्भाग्य मनुष्य के अतीत के पूरे दुर्भाग्य और दुर्व्यवस्था को प्रमाणित करता है। वह उससे भिन्न नहीं है। उसका पूरा परिणाम उसके कलाइमेक्स में है। वही धारा अपनी पूरी जगह पहुंच गई है। जो गंगा हिमालय से निकलती है, वहां छोटी दिखाई पड़ती है, वहाँ पहचानना मुश्किल होता है कि यह गंगा है, वही जब सागर में मिलती है तो बहुत बड़ी हो जाती है और पहचानना बहुत सरल हो जाता है कि यही गंगा है। लेकिन वही जो हिमालय से निकलती है जो सागर में मिलती है, वही गंगा है। आज गंगा बड़ी हो गई है। लेकिन वही गंगा हजारों साल से धीमे-धीमे बहती रही है। उसके अंदर धारायें बहती रही हैं। आज उसने विराट रूप ले लिया है। आज हम पागल हो गये हैं। घबड़ा गये हैं। अतीत को हम पहचान नहीं पाते हैं और जिस बीमार को, उसके काजेलिटी को, जिसके मूल कारण को हम पहचान नहीं पाते हैं उसे हम दूर भी नहीं कर सकते। मनुष्य की आज तक की सारी शिक्षा ही गलत रही है, क्योंकि सारी शिक्षा के केन्द्र पर रही है महत्वाकांक्षा (अँम्बिशन)। महत्वाकांक्षा ज्वर है। शरीर ज्वर-ग्रस्त होता है, मन भी ज्वर-ग्रस्त किया जा सकता है। जब हम बच्चों को सिखाते हैं कि प्रथम हो जाओ, हम उन्हें क्या सिखा रहे हैं? हम उन्हें सिखा रहे हैं कि दूसरों को पीछे करने में आनंद अनुभव करना। हम उन्हें यही सिखा रहे हैं कि दूसरों को पीछे करने में आनंद का अनुभव करना। मतलब क्या है इस बात का? जो आदमी प्रथम है उसको प्रथम होने की खुशी है? नहीं, उसकी खुशी २९ लोगों को दुखी करने में है और यह संख्या जितनी बड़ी होगी, ३० की जगह ३०००, उसकी खुशी और बढ़ जायगी। ३०००० होगी तो उसकी खुशी और भी बढ़ जायगी और तीस लाख होगी तो उसकी खुशी और भी बढ़ जायगी। और कक्षा में वह अकेला हो तो उसकी खुशी फीकी हो जायगी। अगर वह अकेला ही है कक्षा का विद्यार्थी और प्रथम आ जाय तो उसे कुछ भी खुशी नहीं होगी। लेकिन हम यही तो सिखाते हैं और फिर जब सारे जीवन में प्रथम होने की दौड़ शुरू होती है तो हम घबराने लगते हैं। और जो प्रथम होने को ही एक मात्र मूल्य समझता है, सफल होने को, सुफल होने को नहीं, प्रथम होने पर ही जिसे जीवन के सारे पुरस्कार मिलते हैं, रेकगनिशन मिलता है, वह आदमी कैसे देखे कि किसकी लाश पर पैर रखकर और किसके कंधे को किसके सिर पर यात्रा करनी पड़ी? अगर इस सब का हिसाब रखे तो दिल्ली नहीं पहुंच सकता। प्रथम नहीं हो सकता। तो प्रथम होने की कोशिश में बहुत जरूरी है कि हम लोगों को सीढ़ियाँ बनायें, उन पर पैर रखें और उनसे आगे निकल जायें। आदमी का एक ही उपयोग है कि वह सीढ़ी का काम दे दे और कोई उपयोग नहीं। और जहां सारे मुल्क में ही हर आदमी दूसरे आदमी को सीढ़ी बनाना चाहता है, वहाँ अगर जीवन एक अंतर्द्वन्द, एक संघर्ष, एक हिंसा हो जाय तो किसको दोष देने जाते हैं? कलियुग को? बिगड़े हुये लोगों को? ये तो सहज परिणाम हैं और रोग को हम पहचानते ही नहीं। डॉक्टर राधाकृष्णन् शिक्षक से राष्ट्रपति हो गये तो सारे मुल्क में शिक्षकों ने शिक्षक-दिवस मनाना शुरू कर दिया। एक शिक्षक दिवस पर भूल से कुछ लोगों ने मुझे भी बुला लिया। मैंने उनसे कहा कि मेरी समझ में नहीं आती यह बात कि एक शिक्षक राष्ट्रपति हो गया तो उसमें शिक्षकों का कौनसा सम्मान है। इससे बड़ा और अपमान क्या हो सकता है? एक राष्ट्रपति किसी दिन छोड़ दे दिल्ली और आ जाय यहाँ और कहे कि हम सेक्सरिया महाविद्यालय में शिक्षक

होंगे तो उस दिन शिक्षक दिवस मनाना और सम्मान करना उसका कि एक राष्ट्रपति ने शिक्षक होने को गौरव दिया है, लेकिन एक शिक्षक राष्ट्रपति हो जाय तो क्या सम्मान है एक शिक्षक का ? सम्मान तो राजनीति का ही है, राष्ट्रपति का ही है और जब एक शिक्षक राष्ट्रपति हो जाय और हम सारे मुल्क में जय जयकार करें तब दूसरे शिक्षक अगर पागल हो जायें राष्ट्रपति होने को तो आश्चर्य क्या है ? कोई बुराई है ? कोई उनका दोष होगा ? हम प्रथम का आदर कब छोड़ेंगे ? हम प्रथम को मूल्य देना कब बंद करेंगे ? हम कब सिखायेंगे कि प्रथम होना हिंसा है ? और जब तक शिक्षा प्रथम के मूल्य को नहीं तोड़ देती तब तक दुनियाँ का कोई भविष्य नहीं। और यह सवाल एक व्यक्ति का नहीं और यह सवाल सिर्फ पढ़ने लिखने का नहीं, इस सवाल पर पूरे जीवन का आधार रखा जाता है।

एक छोटे से गांव में मेरे मित्र ने एक बंगला बना लिया था। उस गांव में उनका ही बंगला सबसे अच्छा था और जब मैं उनके यहाँ मेहमान हुआ तो बंगले की एक-एक चीज को घूमकर दिखने लगे और प्रशंसा करने लगे। वे बड़े प्रसन्न थे। वे बहुत आनंदित थे। फिर चार वर्ष बाद उनके गांव में दुबारा गया। वे बड़े उदास थे। मैंने उनसे पूछा आप अपने बंगले के बारे में कुछ भी नहीं कहते। उन्होंने कहा कि देखते नहीं मेरे पड़ोस में जब से यह बड़ा भवन खड़ा हो गया है, मैं बड़ा उदास हो उठा हूं। मैंने उनसे कहा कि मैं वह बात आपसे कह दूं जो बात उस दिन आपसे कहने को ख्याल में आयी थी, लेकिन शिष्टतावश रुक गया था। उस दिन भी मैंने कहना चाहा था कि आप अपने मकान के बढ़िया होने के कारण खुश नहीं हो रहे थे। बंगले के आसपास झोपड़े थे उसके कारण खुश हो रहे थे। लेकिन यह बात शायद उस दिन आपकी समझ में न आती। अब आपसे कहे देता हूं। मकान आपका वहीं का वहीं। उसमें कोई फर्क नहीं पड़ा लेकिन एक बड़ा मकान बगल में बन गया और आप उदास हो गये। उदासी आती है पास में खड़े बड़े मकान से तो खुशी भी आती थी आपको पास में खड़े झोपड़ों से यह बात आपके ख्याल में आ जाना चाहिये थी। दूसरों को दुख देने से सुख मिल सकता है। यह महत्वाकांक्षा का सूत्र है, अँम्बिशन का मार्ग है। लेकिन क्या कोई आदमी कभी दूसरों को दुख देकर सुखी हो सकता है ? क्या यह संभव है ? क्या यह मनोवैज्ञानिक है ? क्या यह जीवन के नियमों में एक नियम है कि कोई दूसरे को दुख देकर सुखी हो जाय ? असंभव है, बिलकुल असंभव। दूसरों को दुख देकर कोई कभी सुखी नहीं हो सकता, क्योंकि जो हम दूसरों को देते हैं वही दूसरों से वापस लौटना शुरू हो जाता है। तो हम प्रथम हो सकते हैं। फूल मालाएँ पहन सकते हैं, लेकिन, भीतर सुखी नहीं हो सकते। न कोई राष्ट्रपति सुखी हो सकता है और न ही प्रधान-मन्त्री सुखी हो सकता है ? और भी एक बड़ा मजा है कि यह दौड़ जो प्रथम होने की यह इतनी अबसर्ड है, यह अबसर्ड इतनी है यह इतनी बेबूझ इतनी असंगत इसलिये है कि क्या आपको पता है कि कोई आदमी बिलकुल प्रथम कभी नहीं हो सकता। कितना ही प्रथम हो जाय पाता है और लोग आगे हैं। कहीं भी पहुंच जाय पाता है और लोग आगे हैं। आज तक मनुष्य जाति के दस हजार वर्षों के इतिहास में एक भी आदमी यह नहीं कह सकता कि मैं बिलकुल प्रथम हो गया हूं। सिकन्दर हिन्दुस्तान जीतने आ रहा था एक फकीर मिल गया रास्ते में जिसका नाम डॉयजिनीज था। उस फकीर ने सिकन्दर से कहा कि क्या इरादे हैं ? क्या पूरी दुनियां जीत लेगा ? सिकन्दर ने कहा कि पूरी दुनियां ही जीतकर रुकूंगा। डॉयजिनीज ने कहा फिर क्या करेगा ? दूसरी दुनियां तो है ही नहीं और सिकंदर एकदम उदास हो गया और उसने कहा यह तो मुझे ख्याल ही नहीं आया कि दूसरी दुनियां है ही नहीं। जीत कर मैं क्या करूँगा ? एक वैज्ञानिक था। वह कुछ छोटे कीड़े-मकोड़ों पर खोज करता। एक खास तरह का गुबारिला होता है। उसकी आदत आदमी जैसी होती है। वह अपने नेता के पीछे चलता है। गुबारिला नेता आगे चलता है और उसके साथी पीछे चलते हैं। आदमियों जैसा ही होता है। और जब तक नेता न रुक जाऊं वह नहीं रुकता। तो उसने एक गोल थाली में एक गुबारिले नेता को छोड़ दिया और उसके पीछे

१०-१५ अन्य गुबारिलाओं को छोड़ दिया । वह गोल थाली कभी खतम हो नहीं होती । सीधी कोई जगह होती तो कोई अंत आ जाता । कितनी ही बड़ी होती तो भी अंत आ जाता । गोल थाली छोटी सी थी पर उसका कोई अंत नहीं आता था । गुबरिला नेता चलता था । पीछे उसके कीड़े चलते जाते थे । इतनी हैरानी हो गयी कि कीड़े थक थक के मरने लगे पर चलना जारी है । वहां कोई अंत नहीं हुआ । आदमी भी प्रथम होने की दौड़ में किसी गोल चक्कर में चलता है, नहीं तो कोई अंत आ गया होता और वह पहुंच जाता और कहता कि मैं पहला आ चुका हूं । कोई पहला आ जाता और कहता आ गया अंत, पा ली मैंने मंजिल । आज तक किसी ने नहीं कहा । कहीं भी पहुंच जाओ, आगे कोई न कोई मौजूद है । कोई पीछे मौजूद है । कोई पीछे है । कोई आगे मौजूद है । हम हमेशा बीच में हैं । हर आदमी हमेशा बीच में ही रहता है । न कोई आदमी पहला हो पाता है और न ही कोने के छोर पर पहुंच पाता है । शायद मनुष्य भी कोई गोल चक्कर में चल रहा है । पृथ्वी ही गोल है । शायद मनुष्य के मन के भ्रमण भी गोल परिधियां बनाते है । शायद जगत में सभी चीजें चक्कर में चलती हैं, चांद-तारे भी, सूरज भी, पृथ्वी भी, आदमी का मन भी गोल चक्कर में भ्रमण करता है । प्रथम होने की दौड़ कभी सफल नहीं हो पाती । दूसरे असफल हो जाते हैं, सफल कभी कोई हो नहीं पाता । दुखी सब हो जाते है सुखी कभी कोई हो नहीं पाता । क्या महत्वाकांक्षा सिखाने वाली शिक्षा मनुष्य के हृदय के पात्र को कभी भर सकेगी ? नहीं ।

शिक्षक यह कहते हैं; शिक्षा शास्त्री यह कहते हैं कि अगर हम महत्वाकांक्षा न सिखायें तो आदमी बढ़ेगा ही नहीं । दौड़ेगा ही नहीं । दौड़ने के लिये त्वरा चाहिये, दौड़ने के लिये बुखार चाहिये । दौड़ने के लिये गर्मी चाहिये । दौड़ने के लिये होड़ चाहिये । किसी को पीछे करने की कल्पना और कामना चाहिये । किसी को पराजित करने का वेग चाहिये । नहीं तो कोई आदमी दौड़ेगा नहीं । प्रत्येक आदमी अपनी-अपनी जगह खड़ा रह जायगा । एक कुत्ते ने एक बार काशी से दिल्ली की यात्रा शुरू की । अब जमाना बदल गया । पहले लोग दिल्ली से काशी जाते थे । अब लोग काशी से दिल्ली जाने लगे । आदमियों के अखबारों को सड़क पर पड़ा देखकर कुत्तों को भी खबर लगी कि हमें दिल्ली जाना जरूरी है । उनमें जो नेता था, उसने कहा मित्रो, मैं जाता हूं । दिल्ली पहुंच के ही रहेंगे । दिल्ली लेकर ही रहेंगे । कुत्तों ने उसका बड़ा स्वागत किया और बिदा कर दी । लंबा था मार्ग । एक माह का मार्ग था, वह सोचता था महीना लग जाएगा, लेकिन ७ दिन में ही दिल्ली आ गया । आ क्या गया, लाया गया । पहुंचाया गया क्योंकि एक गांव के कुत्ते उसका दूसरे गांव तक पीछा करते थे । वे छोड़कर जा भी नहीं पाते थे कि दूसरे गांव के कुत्ते पीछा करने लगते । उसे कहीं बीच में विश्राम का मौका नहीं मिला । लेकिन इतने पर ही उस कुत्ते के प्राण निकल गये । दिल्ली तो बेचारा पहुंच गया, लेकिन मर गया बेचारा दिल्ली पहुंच कर । दिल्ली कब्र बनती है पहुंचने वालों की । दिल्ली बड़ा कब्रिस्तान है । उस कुत्ते की कब्र बन गई । लेकिन महीने की यात्रा ७ दिन में पूरी हो गई, क्योंकि एक त्वरा थी । बुखार था । चारों तरफ से लोग उसके पीछे लगे थे । हम आदमी के साथ भी यही करते हैं । हम आदमी को भी किसी तरह दिल्ली पहुंचा देना चाहते हैं । मंजिल पर पहुंचा देना चाहते हैं । तो दौड़ाओ उसको, महत्वाकांक्षा जगाओ । कि दूसरे निकले जा रहे हैं, तू खो जायेगा । एक क्षण भी खोना उचित नहीं है । देखता नहीं सब भागे जाते हैं । तू खड़ा रहा कि गया । तू दौड़ । वह देखता है कि जो पहुंचता है आगे उसकी फूलमालायें बढ़ती जाती हैं । उसकी प्रतिष्ठा बढ़ती है अखबार में उसके फोटो पीछे के पेज से पहले पेज पर आने लगते हैं । देखता है चारों तरफ यह हो रहा है । तो उसके भीतर भी जगता है बुखार । वह भी भागना शुरू कर देता है । फिर जो उससे पहले पहुंच गये हैं कहते हैं इतनी हिंसा नहीं इतनी होड़ नहीं । जो प्रथम हो जाते हैं वे पीछे के लोगों को समझाते हैं पीछे रहो, पीछे रहने में भी बड़ा सुख है । यह उनकी आत्म-रक्षा का उपाय है, यह सेल्फ डिफेन्स है ।

नेता अनुयायियों से कहते हैं कि अनुयायी रहना बड़ी गौरव की बात है। राजनेता कहते हैं शिक्षक का बड़ा मान है और मांग करते हैं दौड़ो मत। जिन तरकीबों से वह आगे पहुंच जाता है उन्हीं तरकीबों को वह स्वयं तोड़ने लगता है ताकि दूसरे न पहुंच जायें। जिन सीढ़ियों से उसकी यात्रा होती है उन्हीं सीढ़ियों को पहुंचाने वाला तोड़ने लगता है। ताकि दूसरे न पहुंच जायें। लेकिन दूसरे भी अंधे नहीं हैं। उनको भी दिखाई पड़ता है कि दूसरे किन तरकीबों से आगे पहुंच गये हैं। वे भी पहुंचना चाहते हैं और बचपन से ही पहुंचने के लिये उनके प्राणों में प्रविष्ट कराया जाता है, महत्वाकांक्षा का ज्वर। प्रत्येक व्यक्ति, समाज और राष्ट्र इसी से पीड़ित हैं।

उसके परिणाम हमारे सम्मुख हैं। पिछले तीन हजार वर्षों में १५ हजार युद्ध हुये हैं। एक-एक वर्ष में पांच-पांच युद्ध। घबराने वाली बात है। तीन हजार वर्षों में पन्द्रह हजार युद्ध। रोज ही हम लड़ते रहे हैं। जो लोग इतिहास जानते हैं वे यह कहते हैं कि मनुष्य ने आज तक शांति का कोई काल नहीं देखा। या तो युद्ध हुये हैं या युद्ध की तैयारी हुई है। बस दो ही तरह के काल होते हैं या तो युद्ध या युद्ध की तैयारी। उस युद्ध की तैयारी के समय को ही हम मन को समझाने के लिये शांति का समय कहते हैं। ये कैसे इतने युद्ध हुये? पहले महायुद्ध में साढ़े तीन करोड़ लोगों की हत्या हुई। दूसरे महायुद्ध में साढ़े सात करोड़ लोगों की। लेकिन अब तो दोनों युद्ध बड़े छोटे मालूम पड़ते हैं, क्योंकि हमने बहुत बड़े युद्ध की तैयारी कर ली है। आइन्स्टीन से मरने के पूर्व किसी ने पूछा कि तीसरे महायुद्ध में क्या होगा। बता सकते हैं? आप तो बड़े जानकार हैं। आइन्स्टीन ने कहा–तीसरे के संबंध में मत पूछो। चौथे के संबंध में यदि पूछते हो तो उसके बारे में कुछ बता सकता हूं। सुनने वाला हैरान हो गया। चौथे के बारे में बता सकते हैं तीसरे के बारे में कुछ नहीं बता सकते। आइन्स्टीन ने कहा तीसरे की बात मत करो। चौथे के बारे में आप क्या बता सकते हैं पूछनेवाले ने कहा। आइन्स्टीन ने कहा–चौथा महायुद्ध कभी नहीं होगा। आखिर युद्ध के लिये भी तो आदमियों की जरूरत है। बिना आदमियों के तो युद्ध नहीं हो सकता। यह तो मजबूरी है। अगर बिना आदमियों के युद्ध हो सकता तो वह भी एक मजा है। आदमी जरूरी है युद्ध के लिये। बड़ी आवश्यक चीज है। आइन्स्टीन ने कहा बड़ी मुश्किल है चौथा नहीं हो सकेगा, क्योंकि तीसरे में किसी आदमी के बचने की कोई संभावना नहीं। और आदमी के ही बचने की संभावना नहीं होती तो कोई हर्ज नहीं था। आदमी ने पृथ्वी में कुछ भी नहीं जोड़ा है कि उसके हट जाने से पृथ्वी कोई गरीब हो जायगी और दरिद्र हो जायगी। चांदतारे ऐसे ही निकलेंगे। फूल ऐसे ही खिलेंगे। झरने ऐसे ही बहेंगे। पक्षी ऐसे ही गीत गायेंगे। शायद इस पृथ्वी को, इसके पक्षियों को, चांद तारों को पता ही न हो कि आदमी भी है। उसके हट जाने से कुछ फर्क न पड़े। लेकिन सवाल यह नहीं है। आदमी अपने साथ सबको ले जाने की तैयारी कर चुका है। ५० हजार उद्जन बम तैयार हैं। ५० हजार उद्जन बम इस पृथ्वी को मिटाने के लिये बहुत ज्यादा हैं। इस तरह ७ पृथ्वियाँ बिलकुल मिटाई जा सकती हैं। ऐसा ही समझ लें कि एक ही आदमी को ७-७ बार मारना हो तो ऐसा उपाय हमने कर लिया है। वैसे कुछ गणित ऐसा है जिन्दगी का कि आदमी एक ही बार में मर जाता है। लेकिन मौका लेना ठीक नहीं। शायद कोई एक दफे में बच जाय, तो दूसरी बार। दूसरी बार बच जाय तो तीसरी बार। ७ बार की हमने व्यवस्था कर ली है, एक आदमी को मारने की। और आदमियों के साथ मर जायेंगे सब कुछ जो जीवित हैं। हमने समग्र मृत्यु का आयोजन किया है। अपनी ही नहीं अपने साथ समस्त जीवन की। शायद आपकी कल्पना भी न हो। पानी को हम गरम करते हैं सौ डिग्री पर तो वह भाप बनकर उड़ने लगता है। अगर उबलते पानी में आपको डाल दें तो क्या होगा? लेकिन १०० डिग्री कोई गरमी नहीं है। इसलिये घबराइये मत १०० डिग्री में। हमारा मन नहीं मानता कि आपको १०० डिग्री में डाला जाय। बहुत छोटी गरमी। १५०० डिग्री पर लोहा पिघलकर पानी हो जाता है। उसमें आपको डाल दें। लेकिन तो भी मजा पूरा नहीं आ सकता। वह भी गरमी बहुत गरमी नहीं है। २५०० सौ डिग्री पर लोहा भी भाप बनकर उड़ने

लगता है। उसमें आपको डाल दें। लेकिन आदमी का मन इतने से भी नहीं भरता। उद्जन बम से जो गरमी पैदा होती है वह दस करोड़ डिग्री है। २५०० डिग्री पर लोहा भाप बन जाता है इसको ख्याल में ले लें। उद्जन बम से जो गरमी पैदा होती है वह दस करोड़ डिग्री। तबियत में यही आ रहा है आदमी का कुछ ऐसा इंतजाम करें कि मजा पूरा आ जाय।

सूरज पर जितनी गरमी है पृथ्वी पर उतनी हो सकती है उद्जन बम के विस्फोट से। एक उद्जन बम का परिणाम होता है ४० हजार वर्ग मील पर। दस करोड़ डिग्री गरमी उत्पन्न हो जाती है। क्या पौधे बचेंगे? कीड़े-मकोड़े बचेंगे? कुछ भी बचेगा? अगर परमात्मा भी अब तक बच गया हो तो उसके भी बचने की संभावना नहीं। यह महत्वाकांक्षा का अंतिम फल है।

राष्ट्र भी प्रथम होना चाहते हैं। रूस भी, अमरिका और चीन भी। और भारत भी और पाकिस्तान भी। सभी प्रथम होना चाहते हैं। और प्रथम होना चाहते हैं न मालूम किन किन ढंगों से। नशा एक-सा है। रोग एक है। भारत हजारों वर्षों से कहता है कि हम जगत्गुरु हैं सारी दुनिया के। यह भी प्रथम होने की बीमारी का एक हिस्सा है। और कुछ भी नहीं यह बीमारी जरा सौम्य है। यह बुखार जरा तेज नहीं है थोड़ा धीमा है, लेकिन है वही बुखार। क्यों आप जगतगुरु होना चाहते हैं? सामान्य होना काफी नहीं है? जगतगुरु ही होंगे और बड़ा मजा यह है कि कोई कहे या न कहे आप खुद ही डंका पीटते फिरते हैं कि हम जगतगुरु हैं। पागल होने का लक्षण है यह। जगतगुरु होने का लक्षण नहीं है यह। लेकिन यह बीमारी सबको है। सारी दुनिया में है। एक-एक आदमी को है, एक-एक जाति को है, एक-एक राष्ट्र को है। पिछले महायुद्ध में जर्मनी से फ्रांस हारता चला जा रहा था। एक फ्रेन्च सेनापति ने एक अंग्रेज सेनापति से पूछा हम हारते चले जा रहे हैं कुछ भूल तो नहीं हो रही है? उस अंग्रेज सेनापति ने कहा कि रोज प्रार्थना करते हो युद्ध के पहले कि नहीं? बिना प्रार्थना के नहीं जीत सकोगे। हम प्रार्थना करते हैं और तुम जानते हो कि अंग्रेज कभी हारते नहीं हैं। उस फ्रेंच सेनापति ने कहा कि प्रार्थना तो करते हैं और जब से हारने लगे हैं बहुत जोरों से करते हैं। अंग्रेज सेनापति ने कहा कि मित्र, किस भाषा में करते हो? फ्रांसिसी में तो नहीं करते? अंग्रेजी के अलावा भगवान कोई भाषा नहीं जानता। अंग्रेजी ही भाषा है श्रेष्ठ, भगवान उसको समझता है। फ्रेंच में करते रहोगे तो मर जाओगे, कट जाओगे। इधर हिन्दू कहते रहे हैं हजारों सालों से कि संस्कृत देववाणी है। यह वही बीमारी है। यदि वह देववाणी है तो दूसरी वाणी किसकी है। कोई भाषा देववाणी नहीं और कोई राष्ट्र जगतगुरु नहीं और किसी राष्ट्र के प्रथम होने की बीमारी विक्षिप्तता का सबूत है, इनसैनिटी का सबूत है। लेकिन जो हम एक को सिखाते हैं वही हम सबको सिखाते हैं। पूरी भीड़ को सिखाते हैं। पूरा मुल्क सीख लेता है। फिर उसके परिणाम आने शुरू होते हैं तो हम घबराते हैं।

नहीं आदमी को इस प्रथम होने की दौड़ से मुक्त करना होगा। धार्मिक आदमी मैं उसी को कहता हूं जिसने प्रथम होने की दौड़ छोड़ दी। फिर वह क्या हो? जिसने प्रथम होने की दौड़ छोड़ दी हो उसके लिये होने के लिये क्या बचता है? यही बचता है कि वह स्वयं हो जाय। प्रथम होने के लिये दूसरे के साथ प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है। स्वयं होने के लिये अपने साथ। शिक्षा के आधार बदलने हैं। दूसरे से प्रतिस्पर्धा नहीं, मेरे स्वयं के व्यक्तित्व से, मैं जो कल था उससे। कल सूरज ने मुझे जहां छोड़ा था, आज सुबह का सूरज मुझे वहां न पाये। मैं बढ़ जाऊं। किससे आगे बढ़ जाऊं? खुद से। अब तक हम आगे बढ़ने में सोचते हैं कि किसी दूसरे से, किसी और से। खुद से आगे बढ़ना है। रोज स्वयं को अतिक्रमण करना है। कल जितना मैं गीत जानता था उससे आज ज्यादा जानूं, किसी दूसरे से नहीं। वह मापदंड गलत हो गया। उस मापदंड को अगर चलाते हैं तो ५० साल बाद आदमी के बचने की कोई उम्मीद नहीं। वह मापदंड असफल हो गया। वह दस हजार साल की भूल तय हो गयी। कोई दूसरा मापदंड खोज लेना है इसके पहले कि आदमी आत्महत्या

खोज ले। और वह यह है कि क्या आदमी को हम स्वयं के अतिक्रमण की शिक्षा दे सकते हैं ? मुझे दिखाई पड़ता है कि हम दे सकते हैं और जीवन में जिन लोगों ने थोड़ी सी शिक्षा पाई है चाहे वे बुद्ध हों, महावीर हों, चाहे राम कृष्ण हों, चाहे गांधी हों, चाहे कोई और हों। जो आदमी ठीक से शिक्षित हुआ है, उसने अपने से प्रतिस्पर्धा की है दूसरे से नहीं। एक डच पेंटर था वॉनगॉग किसी ने पूछा कि मेरे मित्र, तुम रोज-रोज इतने सुन्दर चित्र बनाये चले जाते हो किससे चल रही है यह प्रतिस्पर्धा ? वॉनगॉग ने कहा—अपने से। किसी और का तो मुझे ख्याल भी नहीं, लेकिन मैं जहां तक था, वहां न रह जाऊं। कल मैं जहां था, वहां न रह जाऊं। कल मैं जहां था वहाँ से आगे चला जाऊं। अपनी ही खोज में, आत्म-आविष्कार में आत्म-सृजन में, स्वयं को जानने में, पहचानने में, जीने में। यह सृजनात्मकता का क्रिएटिविटि का सूत्र, और मै दूसरे से आगे बढ़ जाऊं, दूसरे को पार कर जाऊं, पीछे छोड़ दूँ, यह है डिस्ट्रक्टिविटि का, विध्वंशता का सूत्र। महत्वाकांक्षा विध्वंश है, आत्म-परिष्कार सृजन है। आत्म-परिष्कार पर निर्मित करने हैं भवन शिक्षा के, रखनी है बुनियाद। तो नया मनुष्य पैदा हो सकता है।

विस्तार में और तो मैं उसके कुछ नहीं कह सकूँगा। लेकिन यह थोड़ी सी बात मैंने कही। नहीं कहता हूं कि मेरी बात आप स्वीकार कर लें। क्योंकि जो आपसे कहे कि मेरी बात मान लो तो समझ लेना कि वह आपका दुश्मन है, क्योंकि इसी तरह के लोगों ने आदमियों के मस्तिष्क को, विवेक को विकसित नहीं होने दिया। और यह बात मनवाने के ढंग बहुत प्रकार के हो सकते हैं। मैं छाती पर तलवार लेकर खड़ा हो सकता हूं। वह भी बात मनवाने का ढंग है। मैं उपवास करके आपके घर के बाहर बैठ सकता हूं। वह भी बात मनवाने का ढंग है। मैं बहुत प्रेम प्रकट कर सकता हूं। वह भी बात मनवाने का ढंग है। और मैं बहुत सुचरित्र हो सकता हूं, चरित्रवान हो सकता हूं। वह भी बात मनवाने का ढंग हो सकता है किन्तु कोई कारण नहीं मेरी बात मानने का। उसे सोचें, विचारें, खोजबीन करें, उस विचार का मंथन करें, विश्लेषण करें, तर्क करें, उसका विरोध करें, उसका खंडन करें अपने भीतर। और अगर इन सारे विरोध खंडन और विचार के बाद कुछ दिखाई पड़ जाय तो उसमें से फिर मेरा नहीं रह जाता है, आपका हो जाता है। और जो सत्य अपना है वही मुक्तिदायी है। जो सत्य अपना है वह सृजनात्मक है। जो सत्य अपना है वही जीवन को आनंद से, आलोक से भरता है। शिक्षा के संबंध में नॉन अैम्बिशन माईंड (गैर-महत्वाकांक्षी चित्त) हम कैसे पैदा कर सकें। क्या अर्थ होगा उसका वह मैंने आपसे कहा है। मेरी बात इतने प्रेम शांति से सुनी उससे मैं बहुत-बहुत आनंदित हूं और अंत में सबके भीतर बैठे हुए परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें। ●●●

प्रेम और मेरी दृष्टि

प्रेम के संबंध में बोलना मेरे लिए अत्यंत कठिन है।
क्योंकि, तब मैं प्रेम ही हो जाता हूं।
प्रेम जीवन का सबसे बड़ा रहस्य है।
प्रार्थना और परमात्मा के फूल भी तो प्रेम के पौधे में ही लगते हैं।
प्रेम है दान।
स्वयं का ही दान।
और बेशर्त।
क्योंकि, जहां शर्त है, वहां दान नहीं है। ●●

पानी जैसे निर्मल, पर्वत जैसे कठोर

(पिछले अंक में आप पढ़ चुके हैं : दुनिया में बहुत अच्छे आदमी हुए और कठिनाई यही रही कि अच्छा आदमी सौम्य और मृदु था, इसलिए दुनिया बुरी रही। और जीसस के इस कृत्य के बाद अब आप अंतिम रूप में आचार्य श्री की इस सुलझी जीवन दृष्टि को पढ़ेंगे, जहां जीसस ने ब्याजखोरों के लिए कोड़ा उठाकर दूकानें पलट दीं।)

इतने मृदु--इतने सौम्य आप। आप कोड़ा उठा कर ब्याज-खोरों की दूकानें उलटते हैं। मैं कहता हूं जीसस ने ठीक किया ब्याज-खोरों की दूकानें किसी को उलटनी ही पड़ेंगी। अगर ब्याज-खोरों की दूकानें कोई नहीं उलटता तो ब्याज-खोर तो यह चाहता है कि सौम्य और मृदु भाषा में आप बात करें–ताकि उसकी ब्याज की दूकान चलती रहे–और सौम्य और मृदु भाषा कहीं कोई चोट नहीं पहुंचाती कहीं कोई नुकसान नहीं करती।

दुनिया में अब आने वाले बुद्धों को, अब आने वाले महावीरों को, आने वाले कन्फ्यूशियसों को, आने वाले जीसस को आक्रमक होना पड़ेगा। दुनिया बहुत कुरूप रह चुकी। और सौम्य रहने से अब नहीं चल सकता है। तो यह जो आपने पूछा–वह ठीक पूछा लेकिन आप यदि समझें कि आक्रमक होना हिंसा से ही निकलता है–ऐसा तो अनिवार्य नहीं है। आक्रमक होना करुणा से भी निकल सकता है। Compassionate भी हो सकता है। लेकिन हम एक ही तरह के आक्रमक होने को जानते हैं–हिंसा के आक्रमण को। हम एक दूसरे किस्म के आक्रमण को नहीं जानते-करुणा के आक्रमण को। अब तक हिंसा आक्रमक रही है–अहिंसा सौम्य रही है। करुणा सौम्य रही है। सौम्य करुणा के कारण ही दुनिया में अच्छी बातें तो बहुत हुईं–लेकिन दुनिया अच्छी नहीं हो सकी है। करुणा को भी आक्रमक होना पड़ेगा। करुणा को भी बदलने के लिये क्रांतिकारी होना पड़ेगा। करुणा को भी चोट करनी पड़ेगी। तो कई बार ऐसा होता है कि हमें दिखाई भी नहीं पड़ता कि चोट हमारे हित में है–हमारे मंगल में है। कठिनाई तो यह है कि जिनके हित में चोट हो—वे ही आकर कहेंगे कि आप और ऐसी चोट की बातें कर रहे हैं। क्योंकि हजारों सालों से उन्हें समझाया गया है कि चोट की बात ही नहीं करनी।

मैंने सुना है—एक फकीर था। उस फकीर के पास एक आदमी आया। और उस आदमी ने आकर उस फकीर ने कहा कि मैं आध्यात्मिक-योग-ध्यान साधना चाहता हूं। मैं आध्यात्मिक होना चाहता हूं। मुझे अपनी शरण में लें—मुझे वह शास्त्र बतलावें जिसे पढ़कर मैं आध्यात्मिक हो जाऊं। उस फकीर ने कहा बंद कर बकवास। अध्यात्म वगैरह की बात ही मत कर, और यहाँ से बाहर निकल जा और दुबारा इस आश्रम में लौट कर मत आना। बाहर हो।

वह आदमी तो घबड़ा गया। आसपास दस पच्चीस जो बैठे दूसरे आदमी थे वे भी घबड़ा गये। वह आदमी तो बेचारा चला गया। उन दस पच्चीस लोगों ने कहा कि महाराज, हम तो सदा आपको सौम्य समझते थे, और आपने यह कैसा दुर्व्यवहार किया ? हम समझे नहीं आप इतने जोर से क्यों बोले ? उस फकीर ने कहा थोड़ी

देर ठहरो–इसके पहिले कि मैं तुम्हें भी निकालकर बाहर करूँ, मैं तुम्हें एक दृष्टान्त देता हूं। वह फकीर थोडी देर चुप बैठा रहा। एक पक्षी खिड़की से घुसा भीतर और सारे कमरे में चक्कर लगाने लगा। अब आप जानते ही हैं पक्षियों को, आदमियों जैसी बुद्धि उनकी भी होती है। अगर पक्षी कमरे के भीतर घुस जाय तो खुली खिड़की को छोड़कर सब जगह चोट मारेगा, निकलने की कोशिश करेगा–खुली खिड़की छोड़कर। आदमियों जैसी बुद्धि उसकी भी होती है। खुली खिड़की छोड़ देगा, और सब दीवालों पर चोट मारेगा-और जहां से न निकल सके वहां और जोर से चोट मारेगा। और जब नहीं निकल सकेगा–घबरा जायगा–तब घबराहट में पागल की तरह चोट मारेगा–फिर खुली खिड़की देखना मुश्किल हो जायगा। वह पक्षी जोर से चक्कर काट रहा है–दीवाल से टकरा रहा है। फिर वह जाके घबड़ा के, खुली खिड़की के ऊपर बैठ गया। फकीर ने एक क्षण उसे देखा और जोर से ताली बजाई। वह ताली का बजना–वह पक्षी फड़फड़ाया–घबरा गया और खिड़की के बाहर हो गया। उस फकीर ने उन बैठे हुए मित्रों से कहा कि देखा ? मेरी ताली को सुनकर पक्षी ने सोचा होगा बड़ा दुष्ट है–कैसा दुर्व्यवहार करता है ? लेकिन उसी फड़फड़ाहट में वह खुले आकाश में चला गया है। अब शायद उसे पता चले कि ताली किसलिये बजाई गई थी। हो सकता है अब भी पता न चले। तो जिसको मैंने जोर से बाहर निकाल दिया है अगर उसमें थोड़ी भी समझ होगी तो वह खुले आकाश में पहुंच जायगा। मेरा आक्रोश--उस फकीर ने कहा--उसकी स्वतंत्रता के लिये ही है।

मैं भी आपसे कहता हूं–बहुत सी बातें जो मैं बहुत आक्रोश से कहना चाहता हूं–मैं कहता हूं–वे सिर्फ इसलिये कि इस देश के प्राण--जो न जाने कितने दिनों से बंदी हैं–कि भूल ही गये कि बंदी हैं–वे मुक्त हो सकें। इस देश की आत्मा जो कितने दिनों से गुलाम है, वह भूल ही गई कि वह गुलाम है गुलामी को ही स्वतंत्रता समझ रखी है और जंजीरों को आभूषण समझ रही है उसपर चोट लग सके, उसे दिखाई पड़ सके। निश्चित ही सोये हुए आदमी को जगाना, सोये आदमी को aggressive मालूम पड़ता होगा। सोये आदमी को जगायें–उसे बहुत गुस्सा आता है–सपने देखता था सब तोड़ दिये, नींद खराब कर दी। लेकिन सोये हुए को जगाना होगा तो हिलाना ही होगा। मेरा आक्रोश हिलाने के अतिरिक्त और किसी प्रयोजन से नहीं है। नीचे से जड़ें टूट जायें, अतीत का पाखंड छूट जाय, गुलामी टूट जाये, जंजीरें टूट जायें। इस देश की आत्मा मुक्त हो सके, खुले आकाश में उड़ सके। और इसके लिये अब शांति की बातें और रामधुन करने भर से नहीं चल सकता। बहुत हो चुकी रामधुन, बहुत हो चुके भजन कीर्तन, बहुत हो चुकी शांति की बातें, किसी न किसी को शांति को ज्योति देनी पड़ेगी। किसी न किसी को अब शांति को धार देनी पड़ेगी। उसमें भी धार आ जाय, और शांति भी शांति रहकर मुर्दा न हो जाये, जीवन्त बने और जीवन को बदले। इसलिये मैं कहता हूं वह निश्चित मित्र पूछते हैं--वह मेरी गलती थी जो मैं सौम्य था अब ऐसी गलती नहीं होगी।

★★★

"मैं दूसरों की दृष्टि में क्या हूं, यह महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण यह है, कि मैं अपनी स्वयं की दृष्टि में क्या हूं ?"

●●

आत्मा की गहराइयां

एच० के. हाल अहमदाबाद में दिया गया एक प्रवचन

संकलन : जयवंती, जूनागढ़

(पिछले अंक में आप पढ़ चुके हैं : आत्मा अनंत है। आत्मा की गहराई हम स्वयं हैं। स्वयं की इस गहराई से व्यक्ति जीवन भर बचता रहता है, भीतर जाने में वह भयभीत है। जो हम हैं, वहां हम जाना नहीं चाहते । अपने को भुलाने के लिए एक बेहोशी चल रही है । भीतर जाने के लिए कुछ करना नहीं पड़ता — सिर्फ बाहर होना छोड़ना पड़ता है। जहां ध्यान जाता है—वहीं हम हो जाते हैं। और आगे पढ़िए इस प्रवचन की अंतिम किश्त :)

मैंने सुना है, एक आदमी के मकान में आग लग गयी। वह छाती पीट पीट के रो रहा है और मरा जा रहा है। मकान जला जा रहा है, लाखों रुपये खर्च किये थे, वह सब व्यर्थ गये। पास में कोई आदमी उसको आकर कहता है कान में, घबड़ाओ मत, मैंने सुना है, तुम्हारे लड़के ने कल मकान बेच दिया और पैसे मिल गये हैं। बस ! सब खत्म हो गया, रोना विदा हो गया, एक क्षण में। ऐसा नहीं लगा कि, उसने कहा कि ठहरो, अब ठहरते ही ठहरते मैं रोने को रोकूँगा । ऐसा उसने नहीं कहा। बात खत्म हो गई, वह एकदम हंसने लगा। उसने कहा क्या कहते हो। क्या मकान बिक गया ? क्या रुपये मिल गये ? वह रोना ऐसे विदा हो गया जैसे धूप के निकलने पर ओसकण विलीन हो जाते हैं। जैसे दिया जलने पर अंधेरा नहीं रह जाता, वह रोना गया। वह आदमी हंसने लगा, मकान अब भी जल रहा है, वही मकान है, और जोर से जला रहा है । क्योंकि आग और पकड़ गयी है। लेकिन वह आदमी हंसने लगा है, और तभी उसका लड़का भागा हुआ आया और उसने कहा कि आप हंस रहे हैं ? क्या हो गया आपको ? मकान जल रहा है। उसने कहा मैंने सुना है कि रुपये मिल गये। उसने कहा वायदा तो हुआ था, लेकिन रुपये नहीं मिले, और वह आदमी बदल रहा है। वह कहता है—नहीं मंजूर। रोना वापिस लौट आया। वह आदमी फिर छाती पीट रहा है । हमको यह सब नाटक दिखेगा, लेकिन हम सब यही नाटक कर रहे हैं। क्या, हो क्या रहा है इस आदमी को ध्यान खिंच गया मेरा नहीं है बात खत्म हो गई ? ध्यान वापिस लौट आया। जितना बड़ा हमारा मेरे का घेरा होगा, उतना बड़ा हमारा बाहर ध्यान होगा। जो आदमी धीरे धीरे जानने की कोशिश करता है, मेरा..... नहीं है, मेरा नहीं है, उसका ध्यान भीतर लौटना शुरू होता है। ध्यान को बाहर रोके हुए है, मेरा होना। मकान मेरा, तो फिर मकान ध्यान में रहेगा। ऐसा नहीं है कि आप मकान में रहते हैं। ज्यादातर यही है कि मकान आप में रहता है। इस भूल में मत रहना कि, हम मकान के भीतर रहते हैं, मकान हमारे भीतर है।

मैंने सुना है कि एक सम्राट था ईब्राहिम। वह एक दिन अपने राज महल में बैठा है, अपने सिंहासन पर। और एक आदमी बाहर एक द्वारपाल से आकर जिद् करने लगा है कि मुझे भीतर जाने दो। वह द्वारपाल कह रहा है, आप पागल हो गये हैं, भीतर किस लिये जाने दें ? वह आदमी कहता है इस सराय में मुझे ठहरना है। वह द्वारपाल कहता है। क्षमा कीजिये, यह

सराय नहीं है। सम्राट का निवास है। वह द्वारपाल को धक्का देकर भीतर आ जाता है, सम्राट भी हैरान है, उसने बात सुनली है, आवाज सुनली है। वह कहता है तुम पागल तो नहीं हो। यह सम्राट का निवास है। यह मेरा निवास स्थान है। यह सराय नहीं है। वह फकीर फिर भी भीतर घुसा चला आया, भीतर आया तो पता चला कि फकीर है, सन्यासी है। वह खूब हंस रहा है। सम्राट ने पूछा हसते क्यों हो ? बात क्या है ? वह पूछने लगा कि, इसे तुम निवास कहते हो। हम तो सराय समझ के इसमे पहले भी ठहरे हैं। सम्राट ने पूछा कब ठहरे ? उसने कहाकि कुछ जमाना हुआ, इस सिंहासन पर दूसरा आदमी हमने देखा था उस सम्राट ने कहा वो मेरे पिता थे। अब वे गुजर गये, दिवगत हो गये। उस सन्यासी ने कहा लेकिन वे भी कहते थे कि यह मेरा निवास स्थान है। निवास स्थान यहीं का यहीं है, वो कहां चले गये। अगर उनके बिना निवास स्थान हो सकता है उनका, तो उनका नहीं रहा होगा। साथ चला जाता। उसके पहले भी मैं आया हूं, तब दूसरा बूढ़ा मिला था। वह सम्राट ने कहा वो मेरे पिता के पिता थे, वो भी विदा हो गये। तो उस फकीर ने कहा फिर मैं ठहर जाऊं इस सराय में ? क्योंकि इसमें कई लोग ठहर चुके और विदा हो चुके। हम भी ठहरेंगे और विदा हो जावेंगे। और तुम भी विदा हो जाओगे। तो फर्क क्या है ? हो सकता है अगली बार मैं आऊं फिर कोई दूसरा आदमी बैठा मिले, वह कहे हमारे पिताजी दिवगत हो गए, तो इस मकान में निवास बदलते चले जाते हैं इसीलिये मैं इसको सराय कहता हूं। ठहर जाऊं ? वह इब्राहिम मुश्किल में पड़ गया, उसने उस फकीर को कहा तुम यहां ठहरो, लेकिन मैं बाहर जाता हूं क्योंकि मैं इस ख्याल में ही ठहरा था कि यह निवास स्थान है। अगर सराय है तो सम्हालो, जिसको सम्हालना हो। फकीर हंसने लगा। फकीर तो वहाँ ठहर गया। इब्राहिम उस मकान के बाहर हो गया। पर इतने समझदार लोग बहुत कम होते हैं। हम तो..... ..... मेरे में सारा ध्यान केन्द्रित है। मेरी पत्नी, मेरा धन, मेरा मकान, कौन किसकी पत्नी है ? कौन किसका पती है ? नहीं ! छोटे बच्चों पर हम हंसते हैं जब वे गुड्डे का विवाह रचाते हैं। छोटे बच्चे पूरा इंतजाम करते हैं, सात चक्कर लगवाते हैं, गुड्डे गुड्डी को। जुलूस सभी निकालते हैं। बैन्डबाजा भी बजाते हैं। जितनी हैसियत होती है उसी हिसाब से इंजताम पूरा कर लेते हैं। हम हंसते हैं, हम कहते हैं कि क्यों गुड्डा, गुड्डियों के खेल खेल खेल रहे हो। लेकिन अगर उन बच्चों को पता चल जाय कि हमने भी थोड़े बड़े पैमाने पर गुड्डे गुड्डियों के खेल बना रखे हैं। एक औरत एक आदमी कपड़ा बांधकर सात चक्कर लगा लेते हैं। वह मेरी पत्नी हो गयी, वह मेरा पति हो गया, सात चक्कर लगाने से। तो उल्टे सात चक्कर लगा लो तो मामला खत्म हो जायगा ? हो जाना चाहिये, क्योंकि उसी से तो निर्मित हुआ। उल्टे लगा लेने से खुल जायगा Reverse Gear भी तो हर चीज में होती है। लेकिन जोर से मेरी पत्नी, मेरा बेटा, कौन किसका बेटा है ? किसने किसको बनाया है। कोई किसी वैज्ञानिक से पूछता था कि मुर्गी क्या है ? उस वैज्ञानिक ने बहुत बढ़िया बात कही। वह मुर्गियों के सम्बन्ध में बड़ी खोज-बीन करता था। उसने कहा मैंने बहुत दिनों से अध्ययन किया तो जहां तक मैं समझ पाया, मुर्गा क्या है ? तुम पूछते हो तो, मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि मुर्गा अंडे की तरकीब है और अंडा पैदा करने की। मुर्गा जो है वह अंडे को तरकीब है, और अंडे पैदा करने की। और कुछ मामला नहीं मालूम होता है। एक अंडा तरकीब करता है, मुर्गी बनता है, ताकि और अंडे बना सके, और हर अंडा तरकीब करता है और अंडा बनाने की। लेकिन मैं पिता हूं, जरा भी हमें ख्याल नहीं है, यह पिता होना हमारा होना है या प्रकृति की एक शृंखला है। जिसमें जन्म की प्रक्रिया चल रही है। हम क्या हैं उसमें ? मेरा बेटा, क्या मेरा है ? मेरा होना क्या है उसमें ? सिर्फ मैं पैसज Passage बना हूं उसके आने को इसलिये ? मैं एक द्वार बना हूं उसके आने का इसलिये? मैं एक मार्ग बना हूं उसके आने के लिये इसलिये ? पिता क्या है ? मां क्या है ? सिवाय द्वार के ? और द्वार को क्या हक है ? इस दरवाजे से अभी मैं निकल के जाऊंगा, यह द्वार कल कह सकता है कि मैं आपका पिता हूं। दरवाजा कह सकता है कि, रुको कहां

जाते हो, मेरे बेटे हो। मेरे पीछे से, बीच से, निकलते हो। मां और बाप द्वार से ज्यादा नहीं हैं। मेरा और तेरा क्या है वहां ? और जो आ रहा है मां बाप के भीतर से, जो अणु आ रहा है बच्चे में, वो आप ले आये हैं कहीं से ? वह चला आ रहा है, हजार-हजार पीढ़ियों से उतरता चला आ रहा है, वह किसका है ? आपके पिता से आपके पास, और उनके पिता से उनके पास, और उनके पिता, और उनके पिता, अनन्त शृंखला है। जिसमें कड़ियां हैं सिर्फ, मालिक कोई भी नहीं। जिसमें हर कड़ी पीछे की कड़ी से लेती हैं, और आगे की कड़ी को देती चली जाती है। आप अपने बेटे को एक अणु दे जावेंगे, वह आपको भी दिया गया है। आपका क्या है ? मेरा क्या है उसमें ? लेकिन ममत्व का बड़ा घेरा है हमारा। उस ममत्व के घेरे में हम पूरा ध्यान लगाये रखते हैं। असल में ममत्व का मतलब वही होता है हम ध्यान दें। जितना ध्यान देते हैं उतना ममत्व बढ़ता है। जितना ममत्व बढ़ता है उतनी ध्यान की मांग करता है। एक Viscious circle पैदा हो जाता है। इस चक्र को तोड़ना पड़े।

जीसस एक गांव में गये। बड़ी भीड़ है। और जीसस की मां मरियम उनसे मिलने गयी है। वो भीड़ में लोगों से कहती हैं, मुझे भीतर जाने दो, मैं जीसस की मां हूं, मुझे रास्ता दो। भीड़ बहुत है, कोई आदमी चिल्ला के जीसस से कहता है कि तुम्हारी मां मरियम मिलने आयी है। जीसस उससे कहते हैं, उसे कहो कोई किसी की मां नहीं है। बड़ा कठोर मालुम पड़ता है। जीसस का यह कहना कितना कठोर मालुम पड़ता है कि नहीं कोई किसी की मां नहीं है। उसे कहो कोई किसी की मां नहीं है। बहुत कठोर मालुम पड़ता है, लेकिन जीसस कठोर तो हो नहीं सकता है। जो आदमी कहता है, कोई तुम्हारा कोट छीने तो कमीज भी दे देना। हो सकता है संकोचवश सिर्फ कोट ही छीनता हो, कमीज छोड़ता हो, सो कमीज भी दे देना। जो आदमी कहता है, जो एक गाल पर चांटा मारे दूसरा उसके सामने कर देना। वह कठोर हो सकता है ? जो आदमी तुमसे कहे मेरा बोझा एक मील तक ढो चलो उसके साथ दो मील चले जाना। बेचारा ! हो सकता है संकोच से कम कहता हो। जो आदमी मरते वक्त भी यह कह सकता है कि क्षमा कर देना इन सारे लोगों को जो मुझे मारते है। क्योंकि हे परमात्मा, इन्हें पता नहीं है कि, ये क्या कर रहे हैं। वह आदमी कठोर तो नहीं हो सकता, लेकिन वह आदमी कहता है, कोई किसी की मां नहीं है। कह दो उस स्त्री का, शब्द बड़े कठोर हैं, कह दो उस स्त्री को कोई किसी की मां नहीं है। कोई किसी का पिता नहीं है। और वह कहता है, उस भीड़ में कि, तुम में से जो मां को, पिता को, बेटे को पत्नी को अपना मानते हों, वह वापिस लौट जाय। अभी उनका वक्त नहीं आया, मेरे पास आने का। मेरे पास वे आयें जो छोड़ के आ सकते हैं—मेरे को। और मेरे के बहुत रूप हैं, बहुत रूप हैं मेरे के। और जितना बड़ा हमारा मेरे का घेरा है, उतना ही भीतर जाने में अटकाव है, खूटियां है, जिनमें हम बंधे रह जाते हैं। फिर आत्मा की गहराइयां, अंतरात्मा, सब शब्द रह जाते हैं। शब्दों का क्या मूल्य है ? शब्दों का कोई भी मूल्य नहीं है। तो पहली बात ममत्व के घेरे के प्रति जागना पड़ेगा। मेरा कुछ है ? इस जगत में मेरा क्या है ? यह सवाल पूछ ही लेना चाहिये अपने से, मेरा क्या है इस जगत में ? यह जो श्वांस मेरे भीतर आती है, और जाती है, यह भी मेरी नहीं है। मेरा क्या है ? घड़ी भर पहले वह श्वास आपके भीतर थी, तो आपने समझी होगी मेरी है, और घड़ी भर बाद वह मेरे भीतर है, और मैं समझता हूं कि मेरी है, और मैं समझ भी नहीं पाया कि मेरी है कि श्वास जा चुकी है, और किसी की हो गई है। श्वास मेरी नहीं है। जो मेरा खून बन गया है आज, वह कल, कल किसी गाय की नसों में चक्कर लगाता था, परसों किसी वृक्ष शिराओं में दौड़ता था। जो परसों किसी वृक्ष की शिराओं में दौड़ता था, वह वर्षों सूर्य की किरणों में मौजूद था।

कौन किसका है ? क्या किसका है ? मेरा क्या है ? इस प्रवाह में मेरा क्या है ? इस प्रवाह में मेरा

कुछ भी नहीं है, यह स्मरण आ जाय तो मेरे का घेरा, वस्तुओं का घेरा, सबंधों का घेरा, एकदम से तिरोहित हो जाता है। जैसा–'उस आदमी को आग लगे क्षण में पता चलते ही, कि मकान बिक गया और पैसे मिल गये' तिरोहित हो गया। यह एक क्षण में तिरोहित हो जाता है। इसके लिये कुछ सवाल नहीं है कि वर्षों लगते हैं। **वर्षों लग सकते हैं इस बात को समझने में कि मेरा कुछ है या नहीं। लेकिन जिस दिन यह समझ में आ गया कि, मेरा कुछ भी नहीं है, उस दिन एक क्षण भी नहीं लगता, और एक घेरा तिरोहित हो जाता है। विदा हो जाता है, रह ही नहीं जाता। ध्यान और दिशा में यात्रा शुरू करने लगता है।** अभी हमारा सारा ध्यान मेरे की यात्रा में संलग्न है। और मेरे को इसलिये हम बढ़ाये चले जाते हैं, ताकि थोड़ा Space मिले। यात्रा करने को जगह चाहिये ना, तो मेरे को हम बढ़ाते चले जाते है। जिसके पास छोटा मकान है जगह कम है। जिसके पास छोटा मेरा है, उसको भी बड़ी तकलीफ होती है। वहीं वहीं घेरे में घूमना पड़ता है। बड़ा मेरा है, एक मकान अहमदाबाद में है, एक मकान दिल्ली में है, एक कलकत्ते में भी है, एक पहाड़ पर भी है, एक समुद्र में जहाज भी है, तो, मेरे का बड़ा विस्तार है। गति की बड़ी सुविधा है। अहंकार ठीक से घूम सकता है। संकोच की जरूरत नहीं। सीमा की जरूरत नहीं। बड़ा करते चले जाओ, लेकिन जितना बड़ा मेरा होगा, उतनी ही आत्मा की गहराइयों से संबंध विछिन्न होता चला जायगा।

निकोडमस नाम का एक आदमी जीसस के पास गया और उसने कहा कि मैं आया हूं, उसे जानने, जिसके लिये तुम पुकारते हो जीसस ने कहा तो सब छोड़ के आओ, अकेले हो के आओ। उस आदमी ने कहा सब छोड़ के आऊं। अकेला हो के आऊं। अकेला हो तो आया हूं। कुछ साथ तो नहीं लाया। जीसस ने कहा साथ साथ है। वह चाहे कितनी ही दूर हो, इससे कोई सम्बन्ध नहीं। एम मकान चाहिये बना लें हम, बना ही लेंगे, कुछ लोगों का मेरा फैलता ही चला जा रहा है। वह जमीन से तृप्त नहीं है, वह कहते हैं, चांद पर शुक पर कहीं न कहीं मकान बनायेंगे। चांद पर एक मकान हम बना लें, बहुत फासला है लेकिन मेरा जुड़ा है, फासला बिलकुल नहीं है। यह भी हो सकता है कि चांद का मकान गिर चुका हो कल मिट चुका हो, हमें खबर नहीं, लेकिन हमारे भीतर जो चांद का मकान है, वह बना है, और मेरा जुड़ा है। वह मेरा जुड़ा ही है। जीसस ने निकोडमस से कहा तू जा, और सब छोड़ के आ। जीसस ने एक बहुत कठोर बात कही, कहा कि यह हो सकता है कि, सूई के छेद से ऊंट निकल जाय, लेकिन धनी आदमी परमात्मा के द्वार में प्रवेश नहीं पा सकता। इसका मतलब क्या है? इसका क्या मतलब है कि, सब निर्धन हो जावें? इसका क्या मतलब है कि धन से कोई दुश्मनी है? धनी से मतलब जीसस का यही है जिसके मेरे का जितना बड़ा विस्तार है, उसको उतना ही धन का ख्याल आता है। मेरे का बड़ा विस्तार धन है, और धन का कोई अर्थ नहीं है।

सुना है मैंने एक सन्यासी के आश्रम में एक युवक दीक्षित हुआ। बहुत बहुत साधना की, लेकिन कुछ होता नहीं है। उस सन्यासी से उसने कहा वर्ष पर वर्ष बीते चले जाते हैं, कुछ होता नहीं। मैं कहां जाऊं, जहां मैं जान सकूं? अब मैं और कहाँ जाऊं? उस सन्यासी ने कहा कि, तू जा सम्राट के पास। शायद मुझसे नहीं सीख सका, सम्राट से सीख सके। तो वह युवक सम्राट के पास गया। जा कर हैरान हो गया कि, इस सम्राट से मैं क्या सीखूंगा। सम्राट ने उसे बिठाया है। आ गया है तो बैठ गया है, लेकिन बड़ी मुश्किल में पड़ा है। वेश्याएं नाचती हैं, शराब पिलाये चली जा रही हैं, यह सम्राट से क्या सीखूंगा? जल्दी लौट जाऊं, लेकिन रात घनी है, जंगल का फासला, सुबह निकल जाऊँगा, रात रुक जाऊँ। उस सम्राट ने उसे कहा चलें, विश्राम करें, सुबह बातें होंगी। कैसे आये हैं? उस सन्यासी ने कहा आया तो था कुछ और ख्याल से लेकिन अब पूरा नहीं होगा। आशा थी कि कुछ सीखने मिलेगा, अब व्यर्थ हैं। क्या सीखने मिलेगा आपके पास? वह राजा खूब हंसने लगा, उसने कहा जिसने भेजा है,

कुछ सोच के ही भेजा होगा। रात उसे सुला दिया है। बहुत ही कीमती गद्दियां हैं, बहुमूल्य सुगंध छिड़की है, सुन्दर सब इन्तजाम है। सन्यासी ने कहा कभी ऐसा नहीं देखा है। राजा कहता है कोई तकलीफ तो नहीं होगी? वह कहता है कोई तकलीफ नहीं। वह सो गया, लेकिन लेटा है बिस्तर पर कि, देखा कि ऊपर एक तलवार लटकी है और पतले धागे से। उस सन्यासी के तो प्राण अटक गये। उसने कहा यह क्या मामला है। पर तलवार इतनी ऊंची है कि उसे निकाला भी नहीं जा सकता। और अब सोये तो सोये कैसे? और वजन पलंग का इतना है कि पलंग इधर उधर हो नहीं सकता, और नीचे सोयेगा तो राजा क्या कहेगा कि, हमारे स्वागत सम्मान का अपमान किया। नीचे सोयेगा ही, तलवार ऊपर है कच्चे धागे में लटकी है, किस क्षण गिर जाए, जरा हवा चले और गिर जाय क्या पता? तो वह नीचे आंख खोले पड़ा रहा रात भर। सुबह राजा ने उसे उठाया, कहा कोई तकलीफ तो नहीं? उसने कहा तकलीफ तो जरा भी नहीं, लेकिन तकलीफ का सवाल भी नहीं। राजा ने कहा मामला क्या है, कोई अड़चन हुई? बिस्तर पर कोई मुश्किल तो नहीं हुई! बिस्तर आराम दायक तो था? उसने कहा कैसा था इसका कुछ पता नहीं। पता रखने का सवाल भी नहीं। राजा ने कहा बात क्या है, आप कैसी बात कर रहे हैं, आप नाराज हैं क्या? उसने कहा नाराज नहीं, वह जो तलवार लटकी है, अभी सोया कौन? बिस्तर का पता किसको है। वह तलवार को देखूं की सोऊँ? तलवार पर ध्यान रखूं की बिस्तर पर? ध्यान जहां है वहीं रहा। रात भर तलवार थी और मैं। और मौत थी बीच में, हवा के झोंके थे, और धागे का टूट जाना था। बस यही रहा—न महल से कोई मतलब, हम अपने झोपड़े में भी आराम से सो लेते थे। राजा ने कहा तो फिर ध्यान जहाँ हो वहीं सब हो जाता है? कल रात तुम लौट जाते थे, शराब चलती थी, नाच गाना चलता था, सवाल यह नहीं है, सवाल यह है कि मेरा ध्यान वहाँ था या नहीं? और जिस दिन से मौत दिख गई है, उस दिन से ध्यान अब कहीं भी नहीं है। शराब चलती है, नाच गाना भी चलता है, धन दौलत भी है, राज्य भी है, सब है। वह सब है एक तरफ और मौत दिख गयी है, और ध्यान वहां चला गया। जिस दिन से मौत दिख गई, उस दिन से ममत्व छूट गया। ममत्व टूटता है उसका जिसे मौत दिख जावे। क्योंकि अगर मौत है, तो फिर मेरा कौन है? क्योंकि मौत तो सब मेरे से अलग कर देगी, और कोई मेरे साथ जाने को राजी नहीं होगा। कोई मेरा ....मेरे साथ जाने को राजी नहीं होगा। मौत सब मेरे को तोड़ देगी। ध्यान रहे, जिनका ध्यान मेरे पर है, उन्हें मौत का स्मरण नहीं है। और जिन्हें मौत का स्मरण आ जाय, उनका मेरा एकदम विलीन होने लगता है। तो, यह पहला मेरा तोड़ देना ममत्व का। ममत्व उथलापन है बाहर का। जहाँ उथला ही है सब कुछ, जहां गहरा कुछ भी नहीं और ममत्व का भाव छूटा कि ऐसा नहीं छूटता कि मेरा मकान जायगा। ममत्व का भाव छूटते ही मेरा शरीर भी चला जाता है, कि, मेरा है। क्योंकि मेरा क्या है? मेरे विचार भी चले जाते हैं, क्योंकि मेरा क्या है? मेरे भाव भी चले जाते हैं, क्योंकि मेरा क्या है? सुबह मैं क्रोध में था, और कहता था मेरा क्रोध और घड़ी भर बाद मैं पछताने लगा और कहने लगा मेरी क्षमा, मेरा पश्चाताप, क्या मेरा है? घड़ी भर पहले क्रोध मेरा था, घड़ी भर बाद क्षमा मेरी हो गई! घड़ी भर पहले प्रेम मेरा था, आलिंगन के लिये गले लगाया था, घड़ी भर बाद घृणा मेरी हो गयी, आलिंगन गरदन दबाने लगा। क्या मेरा है? भाव मेरे नहीं, विचार मेरे नहीं, शरीर मेरा नहीं, जगत मेरा नहीं, फिर मैं कहाँ हूं? जैसे ही यह मेरा टूट जाय, जैसे ही यह मेरा एकदम तिरोहित हो जाय, यह भ्रम टूट जाय कि मेरा नहीं, मेरा कुछ भी नहीं है, वैसे ही मनुष्य वहां उतर जाता है, जहां स्वयं की गहराइयां हैं। यह मैं आपसे कहना चाहूंगा, ममत्व के प्रति जागें, और जरा मौत को बीच में कसौटी की तरह लायें। जैसे सुनार कसता है न कसौटी पर सोने को कसकस के देखता है, वैसे मौत की कसौटी पर मेरे को कसकस के देखना है। अब तक मौत की कसौटी पर कोई भी मेरा सही नहीं उतरा, सब गलत हो गये हैं। इसीलिये होशियार लोग मौत की कसौटी को छिपा के रख देते हैं, और मेरे को बचा लेते हैं। लेकिन मौत को कोई कितना ही छिपाये, वो छिपती नहीं, वो आती ही चली जाती है।

जीवन - एक अभिनय

(आचार्य श्री की श्रीमती उर्मिला जी से हुई एक अंतरंग वार्ता से)

संकलन : श्री नरेन्द्र

●● पूरा जीवन अगर एक अभिनय हो जाये तो जीवन आत्यंतिक रूप से सहज और सरल हो जाता है। अभिनयकर्त्ता को निरंतर अपने अभिनयों का बोध रहे तो जीवन तब एक आनन्दपूर्ण खेल मात्र रह जाता है। हम तो जीवन के घटनाक्रमों से मिले अभिनयों को पूरा करते ही नहीं वरन् एक स्वीकृत अभिनय से मिले चेहरे को लगाये ही जीवन बिता देते हैं और तब जीवन कुंठा, चिंता और दुख से भर जाये तो दोष किसका ? जिन्दगी बहुरूपी है हमें बहुत से रोल प्ले (Role play) करना पड़ते हैं। हम किसी के पुत्र है तो किसी के पिता भी। हम किसी की बहन हैं तो किसी की पत्नी भी। हम किसी के मालिक हैं तो कहीं किसी के नौकर भी। और सबकी अपनी अपनी अपेक्षायें भी हैं। मां चाहती है उसका बेटा हमेशा बेटे जैसा ही व्यवहार करे पर बेटा बदल जाता है, वह पति का रोल अपने लिए (fix) निश्चित कर लेता है और तब मां जिन्दगी भर के लिए दुखी हो जाती है। बेटे का व्यक्तित्व अगर तरल हो, (flexible) हो तो वह मां के सामने हमेशा बेटे का अभिनय कर सकता है, पत्नि के सामने पति का अभिनय कर सकता है बच्चों के सामने पिता का अभिनय कर सकता है। पर हम एक अभिनय को ही जिन्दगी भर के लिए ओढ़ लेते हैं (Role fix) कर लेते हैं और तब परिणाम में आता है मानसिक तनाव, अतृप्ति, पीड़ा क्योंकि मन तो सब होकर जीना चाहता है। एक मजिस्ट्रेट है वह दिन के छः घंटे अदालत में मजिस्ट्रेट का अभिनय करे ठीक है पर घर आकर भी वह बाकी अठारह घंटे मजिस्ट्रेट बना रहे तो घर के लोगों की बड़ी मुश्किल हो जायेगी। उसका मजिस्ट्रेट जैसा व्यवहार घर में भी हो तो संबंध प्रीतिपूर्ण कैसे होंगे। और फिर पुत्र पुत्र की तरह, पत्नी पत्नी की तरह व्यवहार न करे तो दोष किसका ! नहीं घर आकर उसे अपना अभिनय बदल लेना चाहिए, उसे अपने बच्चों के लिए पिता का अभिनय, पत्नी के लिए पति का अभिनय और मां के सामने पहुंच कर बेटा हो जाना चाहिए। और जो व्यक्ति जितना तरल होगा उतना ही सरल और सहज होगा। तरल व्यक्तित्व का अर्थ है जो भी रोल मिले उसे ही पूरे मन से पूरा करे और पिछले सारे अभिनयों को भूल जाये। अभी जो रोल करना है वही है सब कुछ। पीछे किये अभिनय इसमें बाधा नहीं होंगे, वे सब मिट गये। जिस व्यक्ति ने अपना रोल fix कर लिया वह उतना ही कठोर हो जायेगा उसका 'मैं' उसका 'I' उतना ही fix, उतना ही प्रगाढ़ हो जायेगा। उसका 'अंह' उसका 'ego' उतना ही मजबूत हो जायेगा। और जिसका मैं मजबूत है वह किसी के प्रति प्रेम से कैसे भर सकता है, वह किसी के प्रति सहानुभूतिपूर्ण कैसे हो सकता है ? जिसके व्यक्तित्व में जितनी तरलता होगी flexibility होगी वह उतना ही अधिक सरल और मधुर होगा। एक अभिनेता है उसे सुबह राम का और सन्ध्या रावण का अभिनय मिले और यदि वह सुबह किये राम के अभिनय को न भूले तो क्या सन्ध्या वह रावण के अभिनय को ठीक कर सकेगा। और यदि वह दोनों अभिनयों को ठीक न कर सके तो क्या हम उसे सच्चा अभिनेता कहेंगे ? नहीं, अभिनेता की विशेषता यही है कि जो भी अभिनय उसे मिले उसी को वह पूरे मन से, पूरे प्राणों से पूरा

करे। तभी उसका अभिनय सफल अभिनय होगा। जब वह राम बनता है तब राम बनकर जीता है, सीता के लिए जंगल जंगल रोता है और जब रावण बनता है तब वही रोती बिलखती सीता को कठोरता से उठा ले जाता है। यही उसका सहजपन है, यही उसके अभिनय की पूर्णता है यहीं वह वास्तविक कलाकार है। कृष्ण इन्हीं अर्थों में अद्भुत पूर्ण पुरुष, पूर्ण कलाकार थे। राधा से जब प्रेम किया तब पूरे प्राणों से प्रेम किया उस क्षण किसी अन्य का ख्याल भी न था। रुक्मणी से जब प्रेम किया तब राधा का प्रेम बाधा न बना, उसे भी पूरे मन से प्रेम किया। कृष्ण ने कभी रास रचाया, और स्वयं सखियों के साथ नाचे, कभी बांसुरी बजायी, कभी गायें चरायीं, कभी दही-माखन चुराया। सब कुछ किया जैसे खेल चल रहा हो, अभिनय हो रहा हो। यही कृष्ण युद्ध-भूमि में अर्जुन को कर्मयोग समझा रहा है। ऐसा व्यक्तित्व अत्यंत तरल व्यक्तित्व है, अत्यंत सरल व्यक्तित्व है। यही तरलता कृष्ण की लीला है। यही कृष्ण का सहज आनन्द है।

●●

सत्य : एक दृष्टि

मैं दूसरों की दृष्टि में क्या हूं, यह महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण यह है, कि मैं अपनी स्वयं की दृष्टि में क्या हूं ? पर हम दूसरों की दृष्टि से ही स्वयं को भी देखने के आदी हो जाते हैं, और भूल जाते हैं कि स्वयं को सीधा और प्रत्यक्ष देखने का भी एक रास्ता है और वही रास्ता वास्तविक है, क्योंकि वह परोक्ष नहीं है। पहले तो हम स्वयं ही दूसरों को दिखाने के लिये अपना एक रूप .....एक आवरण बना लेते हैं, और फिर दूसरों को जैसे दिखते हैं, उस पर ही स्वयं के संबंध में भी धारणा कर लेते हैं।

ऐसी आत्म प्रवंचना मनुष्य जीवन भर करता रहता है। धार्मिक जीवन के प्रारम्भ के लिये इस आत्मप्रवंचना पर ही सबसे पहले प्रहार करना होता है।

मैं जैसा हूं और जो हूं.....उसे सारी आत्मवंचनाओं को तोड़कर, पूरी नग्नता में जानना आवश्यक है, क्योंकि उसके बाद ही जीवन साधना की किसी वास्तविक दिशा में चरण उठाये जा सकते हैं। स्वयं के संबंध में असत्य धारणायें.....स्वयं के अभिनय व्यक्तित्व को वास्तविक समझने की भ्रांति के रहते..... .....मनुष्य सत्य के जगत् में प्रवेश नहीं कर सकता है।

★★★

आचार्य श्री का प्रकाशित साहित्य

	हिन्दी	गुजराती	मराठी
१. साधना पथ	३।००	३ ००	३।००
२. क्रांति बीज	३।००	२।५०	२।५०
३. सिंहनाद	१।५०	१।२५	३।००
४. मिट्टी के लिए	३।००	३।५०	—
५. पथ के प्रदीप	३।००	३।८०	—
६. संभोग से समाधि की ओर	३।५०	—	—
७. आचार्य रजनीश समन्वय, विश्लेषण, संसिद्धि	७।५०	—	—
८. मैं कौन हूं ?	२।००	२।००	—
९. नए संकेत	२।००	१।७५	—
१०. अज्ञात की ओर	२।००	२।००	—
११. सत्य की खोज	३।००	—	—
१२. अंतर्यात्रा	३।५०	—	—
१३. शांति की खोज	२।००	—	—
१४. सत्य के अज्ञात सागर का आमंत्रण	१।२५	१।५०	—
१५. सूर्य की ओर उड़ान	१।००	१।००	—
१६. प्रेम के पंख	०।७५	०।७५	०।७५
१७. कुछ ज्योतिर्मय क्षण	१।००	०।७५	—
१८. अमृत कण	०।६०	०।५०	०।५०
१९. अहिंसा दर्शन	०।५०	०।५०	०।५०
२०. नई दिशा, नई बात	०।३०	—	—
२१. न आंखों ने देखा न कानों ने सुना	०।१५	—	—
२२. क्रांति के बीच सबसे बड़ी दीवार	०।३०	—	—
२३. युवक कौन ?	०।३०	—	—
२४. युवक और यौन	०।३०	—	—
२५. नए मनुष्य के जन्म की दिशा	०।७५	०।७५	—
२६. अस्वीकृति में उठा हाथ (भारत, गांधी और मेरी चिंता)	५।००	—	—

प्राप्ति स्थल :

[१] जीवन जागृति केन्द्र, रूम नं. ५३, एम्पायर बिल्डिंग, डा० डी. एन. रोड, बंबई : १ फोन : २६४५३० ।

[२] मोतीलाल बनारसी दास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली–७।

[३] स्वदेशी वस्तु भंडार, जामनगर ।

[४] आर. अंबानी एंड कं०, अपोजिट : जिमखाना, राजकोट ।

[५] चंद्रकांत पटैल, आमोपालव, बैंक आफ इंडिया, रावपुरा, बड़ौदा ।

[६] मोतीलाल बनारसी दास, नेपाली खपरा वाराणसी ।

[७] मोतीलाल बनारसीदास, अशोक राजपथ, पटना ।

[८] भारतीय संस्कृति भवन, माई हीरांगेट, जलंधर शहर ।

[९] नरसिंह भाई पटैल, सहकारी मुद्रणालय, कोठारी मार्ग, सुरेंद्रनगर ।

[१०] सस्तु किताब घर, पथ्थर कुवां, रिलीफ रोड, अहमदाबाद ।

[११] बालगोविंद कुबेरदास, गांधी रोड, अहमदाबाद ।

[१२] सर्वोदय साहित्य भंडार, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर—२

[१३] हीराभाई मेहता, पांचघर, ७०, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता : १

[१४] सुषमा साहित्य मंदिर, जवाहरगंज, जबलपुर ।

[१५] युनिव्हर्सल बुक सर्विस, सिटी कालेल के सामने, जबलपुर ।

[१६] श्री आर. के. पुंगालिया, १०१, टिम्बर मार्केट, पूना–२

नई ज्योतियां ! दिव्य वाणी ! जीवन संगीत से आलोकित

नई साज-सज्जा में

आचार्य श्री रजनीश के विचारों की आध्यात्मिक त्रैमासिक संकलन पत्रिका

ज्योति–शिखा

मूल्य ५) वार्षिक

संपादक : श्री महीपाल

(आप भी अपना वार्षिक शुल्क भेजकर इन कृतियों को प्राप्त कीजिये या आप चाहे तो उपहार में भेंट करें)

संपर्क : जीवन जागृति केन्द्र, रूम नं० ५३, एम्पायर बिल्डिंग,

डा० डी० एन० रोड, बम्बई–१

Phone : 264530

"साक्षी चेतना ही व्यक्तित्व को निखारती है।"

नगर का गौरवशाली प्रतिष्ठान

श्री अरविन्द वस्त्र भंडार

फेन्सी कपड़े के व्यौपारी

जवाहर चौक, सुरेन्द्र नगर (गुजरात)

वर्षों से हम

अपनी श्रेष्ठतम सेवायें

प्रस्तुत कर रहे हैं

निर्माता वृजलाल मणीलाल एन्ड कं. गोंदिया.

तुलसी मानस प्रकाशन

गुप्ता मिल्स स्टेट, बम्बई-१०

श्री हरिकिशनदास अग्रवाल द्वारा लिखित :–

१. **संसार का सार** (मू. रु. ३) आधुनिक खेलों, वैज्ञानिक साधनों, जीव जन्तुओं, वनस्पतियों विभिन्न व्यवसायक व्यक्तियों तथा पदार्थों आदि के द्वारा अध्यात्म शिक्षा देने का यह प्रयत्न नवीन होते हुये अपने प्रस्तुतीकरण के ढंग और साथ ही विवेचन के संदर्भ में एक नवीनता को लिए हुये है। —नवभारत टाइम्स बम्बई

२. **ज्ञान साधना** (मू. रु. २) लोनावाला शिविर में पधारे हुए महापुरुषों के ज्ञानसाधना के प्रति संकेत।

३. **विज्ञान से ज्ञान** (मू. रु. १) ऐक्सरे इत्यादि आधुनिक उदाहरणों को लेकर अध्यात्मविद्या नवयुवकों तक पहुंचाने का सफल प्रयास है।

४. **वेदान्त नवनीत** (मू. १.५० पैसे) सन् १९६४ के अमृतसर के वेदान्त सम्मेलन में पधारे हुए महात्माओं के प्रवचनों का सार है।

५. **वेदान्त का सरल बोध** (मू. रु. १) वेदान्त के क्लिष्ट ग्रन्थों के सिद्धान्त बड़े ही सरल उदाहरणों द्वारा समझाकर पाठकों के सामने रखे गये हैं।

६. **आध्यात्मिक पिक्टोरियल** [हिन्दी व अंग्रेजी] (मू. रु. ३) इस पुस्तक में ज्ञान की गम्भीर बातों को सूत्र रूप में बाँध कर उन्हें चित्र द्वारा प्रस्तुत किया गया है। वाक्य हिन्दी व अंग्रेजी दोनों भाषाओं में हैं।

७. **मुमुक्ष** [आध्यात्मिक उपन्यास] (मू. रु. ३) आध्यात्मिक दृष्टि से पात्रों के जीवन किस प्रकार उपन्यास पाठकों की भौतिक दृष्टि को बदल सकते हैं, इस विषय में एक अत्यन्त ही नया प्रयोग है।

८. **मन की शांति** [पद्य] (मू. रु. ४) अंग्रेजी मूल रचना 'पीस आफ माइण्ड' का अनुवाद, जिसमें मन की शान्ति देने वाली गहन आध्यात्मविद्या को सरल भाषा में पद्यबद्ध किया गया है।

९. **हमारी परम्परा** (मू. रु. २) हमारी ऋषि परम्परा क्या है और उसे जीवन में किस प्रकार उतारा जाए—

और

अध्यात्मिक मासिक

म न न

जिसमें प्रति मास भारत के उच्चकोटि के विद्वानों के लेख एवं प्रख्यात संत-महात्माओं की अनुभव-पूर्ण वाणी को संकलित कर पाठकों तक पहुंचाया जाता है।

एक प्रति ४० पैसे

वार्षिक ४ रु० दो वार्षिक ७ रु० तीन वार्षिक १० रु०

चारवार्षिक १२ रु० और पांच वार्षिक १५ रु०

उत्तम तम्बाकू और कुशल कारीगरों से बनी

शेर और पहलवान छाप बिड़ी

भारत में अग्रणी है

—०—

मोहनलाल हरगोविंददास

(जबलपुर म० प्र०)

मानसेवी संपादक : अजित कुमार। सह-संपादक : आलोक कुमार पाण्डे।

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक एवं मुद्रक : युक्तांद प्रकाशन समिति, कमला नेहरू नगर, जबलपुर।

मुद्रण स्थल : जबलपुर को-आपरेटिव प्रिंटिंग प्रेस, गोलबाजार, जबलपुर।

मुख पृष्ठ चित्र : द्वारका साधना शिविर में आचार्य श्री की जीवन के अनूठे रहस्यों की अभिव्यक्तियाँ
श्री पुष्कर भाई गोकाणी, द्वारका

वर्ष : १ अंक : १४। १६ जनवरी १९७० मूल्य : एक प्रति : ०.६० वार्षिक : १२.००

क्या मेरा है ? भाव मेरे नहीं, विचार मेरे नहीं, शरीर मेरा नहीं, जगत मेरा नहीं, फिर मैं कहां हूं ? जैसे ही यह मेरा टूट जाय, जैसे ही यह मेरा एकदम तिरोहित हो जाय, यह भ्रम टूट जाय कि मेरा नहीं, मेरा कुछ भी नहीं है; वैसे ही मनुष्य वहां उतर जाता है, जहां स्वयं की गहराइयां हैं।

Telegram : SHREYAS

Phones : दुकान : ६३५
: २३५
निवास : १६१

मेसर्स श्रेणीक कुमार चंद्रकांत

अनाज, गुड़, चावल, दाल आदि के कमीशन एजेन्ट

सुरेन्द्रनगर (गुजरात–W. Rly.)